MAHY-116 भारतीय अर्थव्यवस्था विकास के चरण (1206 ई0–1947) भाग–01

इकाई–1 पूर्व मध्यकालीन सामाजिक जीवन

इकाई की रुपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 सामाजिक जीवन

1.2.1 वर्ण व्यवस्था

1.2.2 स्त्रियों की दशा

1.2.3 वस्त्र एवं अलंकरण

1.2.4 मनोरंजन के साधन

1.2.5 परम्पराएं

1.2.6 जाति व्यवस्था

1.2.7 सामन्तवाद

1.3 सांराश

1.4 बोध प्रश्न

1.5 सहायक ग्रन्थ

1.1 प्रस्तावना

पूर्व मध्यकालीन समाज चार वर्णो–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में विभाजित था। इसके अलावा अन्यान्य जातियाँ के अस्तित्व की जानकारी प्राप्त होती है। लेकिन तत्समय जाति व्यवस्था उतनी अधिक जटिल थी जितनी कि परवर्ती कालों में देखने को मिलती है। समाज के सभी वर्गो एवं जातियों में ब्राह्मण वर्ग का प्रतिष्ठित स्थान था। अनेक ग्रंथों से पता चलता है कि बहुसंख्या ब्राह्मण व्यापार वाणिज्य का कार्य करते थे। इसी प्रकार क्षत्रिय जाति के लोगों ने भी व्यापार व औद्योगिक वृत्ति अपना ली। राजतरंगिणी में चौसठ उपजातियों का उल्लेख मिलता है। अनेक जातियों को अछूत समझा जाता था। जिन्हें ग्रामों व नगरो के बाहर निवास करना पड़ता था। पूर्व मध्यकाल समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि वैश्य वर्ण की सामाजिक स्थिति पतनोन्नमुख हुई तथा उन्हें शूद्रों के साथ समेट लिया गया।

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त शिक्षार्थी जान सकेगे–

- पूर्व मध्यकालीन सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों के विषय में।
- सामन्तवाद के विविध पक्षों के विषय में।

1.2 सामाजिक जीवन

1.2.1 वर्ण व्यवस्था

पूर्व मध्यकाल में समाज पूर्णरुपेण प्रतिष्ठित थी। भारतीय समाज चार वर्णो–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के अतिरिक्त अन्य जातियाँ भी अस्तित्व में आ चुकी थी। परन्तु इस समय जाति व्यवस्था उतनी अधिक जटिल नहीं हो पाई थी जितनी कि परवर्ती कालों में देखने को मिलती है। समाज के सभी वर्गो एवं जातियों में ब्राह्मणो का प्रतिष्ठित स्थान था। यद्यपि उनका मुख्य कार्य धार्मिक एवं साहित्यिक था तथापि कुछ ब्राह्मणों ने अपने जातिगण पेशों को छोड़कर अन्य जाातियों की वृत्ति अपना लिया था। अनेक ग्रंथों से पता चलता है

कि बहुसंख्या ब्राह्मण व्यापार वाणिज्य का कार्य करते थे। इसी प्रकार क्षत्रिय जाति के लोगों ने भी व्यापार व औद्योगिक वृत्ति अपना ली। इस प्रकार सभी वर्गो की वृत्तियों में सिथिलता आयी। राजतरंगिणी में 64 उपजातियों का उल्लेख मिलता है। अनेक जातियों को अछूत समझा जाता था। जिन्हें ग्रामों व नगरो के बाहर निवास करना पड़ता था। पूर्व मध्यकाल समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि वैश्य वर्ण की सामाजिक स्थिति पतनोन्नमुख हुई तथा उन्हें शूद्रों के साथ समेट लिया गया। इसका मुख्य कारण इस काल के प्रथम चरण 650ई0 से 1000ई0 में व्यापार वाणिज्य का ह्रास था। इसके विपरीत शूद्रो का सम्बन्ध कृषि के साथ जुड़ जाने से उनकी सामाजिक स्थिति पहले से बेहतर हो गयी। शूद्रों ने कृषि के रुप में वैश्यों का स्थान ग्रहण कर लिया। यही कारण है कि पूर्व मध्य के कुछ लेखक वैश्यों का उल्लेख केवल व्यापारी के रुप में करते हैं। कुछ निम्न श्रेणी के वैश्य शूद्रो के साथ संयुक्त हो गये। किन्तु 11वीं सदी में व्यापार वाणिज्य के प्रगति होने पर वैश्यों की स्थिति में पुनः सुधार हुआ। कुछ वैश्य अत्यंत समृद्ध हो गये तथा उनकी गणना सामन्तों व जमीनदारों में की जाने लगी। इस सामाजिक परिवर्तन का प्रभाव वर्ण व्यवस्था पर भी पड़ा। 11वीं–12वीं शदी तक आते–आते समाज में जाति प्रथा की रुढ़ियों के विरुद्ध आवाज उठायी गयी। जैन आचार्यो, शाक्त, तांत्रिक सम्प्रदाय के अनुयायियों तथा चावार्क मत के पोषकों ने परम्परागत जाति प्रथा को चुनौती देते हुए कर्म की महत्ता का प्रतिपादन किया।

1.2.2 स्त्रियों की दशा

इस समय में महिलाओं को सम्मानित स्थान प्राप्त था। शासक अपनी पत्नियों से प्रेम करते थे तथा उनकी मान–मायार्दा एवं सत्तीव की रक्षा के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार रहते थे। कभी–कभी अन्तर्जातीय विवाह होते थे। पश्चिम भारत में ब्राह्ण क्षत्रिय कन्या के साथ विवाह करते थे। विवाह की आयु क्रमशः कम होती जा रही थी। जौहर व सती की प्रथायें प्रचलित थी। जौहर के अंतर्गत अपने को विदेशियों के हाथ से बचाने के लिए राजपूत महिलायें सामूहिक रुप से प्राणोत्सर्ग करती थी। जबकि सती प्रथा के अंतर्गत पति की मृत्यु के बाद वे चिता बनाकर जल जाती थी। समाज के उच्च वर्ण की महिलाओं में परदा प्रथा का प्रचार होता जा रहा था। विधवाओं को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था तथा उनका दर्शन

अशुभ माना जाने लगा। उनके सर से बाल कटा दिये जाते थे। बाल विवाह के कारण लड़कियों की शिक्षा का ह्रास होता जा रहा था। परन्तु शासक वर्ग की कन्याओं को कुछ प्राशसनिक एवं सैनिक शिक्षा दी जाती थी। शासको ने अनेक स्त्रियों को शासन के उच्च पदों पर आसीन किया था। इस काल की कुछ महिलायें विदुषी भी होती थी तथा सार्वजनिक जीवन में सक्रिय भाग लेती थी। समाज में वैश्याओं के अस्तित्व का भी प्रमाण मिलता है। अल्बरुनी के विवरण से पता चलता है कि स्त्रियाँ पर्याप्त शिक्षिता होती थी तथा सार्वजनिक जीवन में सक्रिय भाग लेती थी। कन्याओं को संस्कृत लिखना व वाद्य में निपुण थी। पूर्व मध्यकालीन समाज की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह कि इस समय जातियों तथा प्रजातियों की संख्या में अत्याधिक वृद्धि हो गयी। ब्राह्मणों के ही समान क्षत्रिय वर्ण भी पूर्व मध्यकाल में कई उपजातियों मं विभाजित हो गया। इस वर्ण के अन्तर्गत हम इस काल से 'राजपूत' नामक एक वीर एवं स्वाभिमानी जाति का आभिर्भाव पाते हैं। बारहवीं शती तक आते–आते राजपूतों के 36 प्रसिद्ध राजवंश उत्तर भारत में स्थापित हो गये। इनकी उत्पत्ति विभिन्न कारणों से हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि राजपूतों के विभिन्न कुलों की उत्पत्ति परम्परा भारतीय वर्णो तथा विदेशी जातियों से हुई। इसमें परम्परागत क्षत्रिय वर्ण के अतिरिक्त अन्य वर्ण भी शामिल थे। दसवींशती के अरब यात्री ई0 न खुर्दहब ने दो प्रकार के क्षत्रियों का उल्लेख किया है– सत्क्षत्रिय एवं क्षत्रिय। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम वर्ग में शासक तथा जमींदार थे जबकि दूसरे में सामान्य क्षत्रिय शामिल थे। पूर्व मध्यकाल में शिल्पी को जाति का आधार मान लिया गया। इस काल में प्रथम चरण में व्यापार–वाणिज्य के पतन के कारण विभिन्न शिल्पी एक ही स्थान से बंध गये तथा उनरका अपना अलग वर्ग बन गया। पूर्व मध्यकालीन सामाजिक जीवन का उल्लेख करते समय हमें उनके रहन–सहन का उल्लेख करना अनिवार्य है–इस समय के लोग जो कि उच्च वर्ग के थे वे लोग ईट तथा गारे की सहायता से बनाये गये घरों में रहते थे। इनकी दीवालों को देवताओं की आकृतियों तथा पशु–चित्रों से सजाया जाता था। राजकीय भवनों के चारों और रमणीय उपवन रहते थे। इनमें फौव्वारें, कुएं, तालाब, कृत्रिम टीले, नालियाँ, झरने, फूलों के कुंज तथा शीशे के मकान बनाये जाते थे। भवन के निर्माण में वास्तुशास्त्र के नियमों का पालन किया जाता था।

खान–पान समाज के उच्च वर्ग के लोगों का खान–पान का स्तर ऊँचा था। दूध, मक्खन, दही तथा घी का प्रचलन था। दही बांस की नली में जमाया जाता था। इन सामग्रियों को ग्वालों की महिलायें गांवों में घूम–घूम के बेचती थी। मांस प्रयोग विविध रुपों में किया जाता था। उच्च वर्ग के लोग भेड़, बकरी, सुअर, मछलियों के मांस का प्रयोग करते थे। जबकि साधारण लोग मछली, कछुये, खरगोश, सुअर अन्य पशुओं के मांस का प्रयोग करते थे। उच्च वर्ग के ताड़ी, नारियल तथा गन्ने के रस के साथ–साथ विदेशी किस्म की शराब पीते थे। ताड़ी को बांस के पीपों में बंद कर जमीन में गाड़ दिया जाता था। भोजन के उपरान्त यहां पान सुपारी खाने का भी रिवाज था। इसे स्त्री–पुरुष दोनो शौक से लेते थे।

1.2.4 मनोरंजन के साधन

इस काल में कई प्रकार के मनोरंजन के साधन प्रचलित थे। उच्च वर्ग के लोग कविता–पाठ, गायन, वादन तथा नृत्यादि से अपना मनोरंजन करते थे। कविता पाठ शासक को बहुत पसंद था। इसे स्त्री व पुरुष दोनों करते थे। कवियों को राजदरबार में सम्मान सहित आमंत्रित किया जाता था तथा कभी–कभी कुछ कवियों को शासन अपना सलाहकार भी नियुक्त कर लेता था। गायन मनोरंजन का दूसरा प्रमुख साधन था। ये विभिन्न प्रकार के संगीत तथा रोगों से परिचित थे। संगीत के साथ–साथ नृत्य भी प्रचलन में था। संगीत मंडलियों के साथ–साथ नर्तकिया भी रहती थी। ढोल बांसुरी वीणा जैसे वाद्ययंत्रों से परिचित तथा इनसे मनोविनोद करते है। मनोरंजन के लिए समय–समय पर विविध प्रकार के खेलो, उत्सवों तथा समारोहों का भी आयोजन किया जाता था। कुश्ती तथा मुक्केबाज का भी प्रचलन था।

1.2.3 वस्त्र एवं अलंकरण

इस समय पुरुष तथा स्त्री दोनों सूती तथा रेशमी वस्त्र धारण करते थे। वस्त्रों की कोर विविध रंगों से रंगी जाती थी। इनपर कुशल कारीगरों द्वारा विभिन्न प्रकार की डिजाइने बनी रहती थी।। कई जगहों पर बाजार में बिकने वाले उत्तम किस्म के सूती तथा रेशमी वस्त्रों का उल्लेख किया गया है। कुछ ग्रंथों में वेदाग हीरे, चमकदार पन्ने, मनिक, नीलम, स्फटिक, स्वर्ण

जड़ित, पुखराज, वैद्य, उत्तम किस्म के मोती व मूंगे वितके थे। आभूषणों में नुपुर, कंकन, कर्णाभूषण चमकीले रंग माला का उल्लेख मिलता है। ये लोग अनेक प्रकार के सुगंधित द्रव्यों का प्रयोग करते थे तथा कुछ महिलायें बालों में फूलों का गजरा बांधते थी। कुछ ग्रंथों से जानकारी मिलती है अनेक सामाजिक रीति रिवाजों का पता चलता है। अतिथि को भोजन के पश्चात् कुछ दूर तक पहुँचाया जाता था। गोहत्या, भ्रुणहत्या तथा ब्राह्मण को ये लोग पाप समझते थे। बच्चे के जन्म के दस दिन के बाद स्त्रियों को स्नान कराया जाता था। दावतों में रसयुक्त मांस जो उबाल कर ठंडा कर दिया जाता था। चावल तथा अन्य चीजों के साथ में प्रयोग किया जाता था। दावतों में मंदिरों पान का भी प्रचलन था।

1.2.5 परम्पराएं

इस काल के लोग भूत–प्रेत तथा जादू–टोने में भी विश्वास करते थे। इस काल में अनेक प्रकार के शुकुन, अपकुशल प्रचलित थे। भाग्य बताने वाले ज्योतिषियों को भी पर्याप्त प्रतिष्ठा मिली थी। ये अनेक प्रकार की मान्यताओं में भी विश्वास करते थे। घर के बाहर कौवे के लिये भोजन की व्यवस्था रखी जाती थी गरीबो को सामूहिक भोज में भोजन कराने की भी परम्परा थी। वटवृक्ष को देवताओं का आवास माना जाता था। मृतक संस्कार की सामान्यतः अग्निदाह तथा समाधीकरण दोनों विधियाँ प्रचलित थी। कलशविधि का भी प्रचलन था। जिसमें अस्थियों को एक कलश में रखकर दफनाया जाता था।

1.2.6 सामन्तवाद

पूर्व मध्यकालीन समाज में सामाजिक जीवन का वर्णन करते समय एक महत्वपूर्ण बात का उल्लेख करना आवश्यक है जो है सामान्तवाद। पूर्वमध्यकालीन समाज में एक विशिष्ट वर्ग का उदय हुआ जिसे 'सामन्त' कहा जाता है। यह समाज का सबसे शक्तिशाली वर्ग था। यद्यपि भारत में हमें सामन्वतवाद का अंकुरण शक–कुषाण काल में ही दिखाई देने लगता है तथापि इसका पूर्ण विकास पूर्व मध्यकाल में ही हुआ। सामन्तवाद के विकास में तत्कालीन शासकों द्वारा प्रदत्त भूमि तथा ग्राम अनुदानों का भी प्रमुख योगदान रहा है। राजाओं द्वारा अपने कुल के व्यक्तियों तथा सम्बन्धियों को विभिन्न प्रान्तों में उपराजा अथवा राज्यपाल

नियुक्त करने की प्रथा से भी सामन्तवाद की जड़ें मजबूत हुई। सामन्तों के रहन–सहन का समाज के कुलीन वर्ग पर प्रभाव पड़ा। सामन्त वैभव एवं विलास का जीवन व्यतीत करते थे। समाज के कुलीन वर्ग ने इसका अनुसरण किया। परिणाम स्वरुप श्रम को घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा। सामन्तों के ही समान, ब्राह्मण भू–स्वामी भी बहुसंख्यक दास–दासियों को अपनी सेवा में रखने लगे। इस प्रकार कुलीन वर्ग दूसरे के श्रम पर निर्भर हो गया।

बोध प्रश्न

1. पूर्व मध्यकालीन सामाजिक जीवन के विविध आयामों का वर्णन करें।

   .....

   .....

   .....

2. पूर्व मध्यकाल की विभिन्न परम्पराओं का वर्णन करें।

   .....

   .....

   .....

सारांश

सहायक ग्रन्थ

इकाई–2 पूर्व मध्यकालीन भू–राजस्व व्यवस्था

इकाई की रुपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 भू–राजस्व व्यवस्था

1.2.1 कर प्रणाली

1.2.2 राजकीय कर

1.0 प्रस्तावना

पूर्वमध्यकाल में भारत के आर्थिक जीवन मे कृषि, व्यवसाय एवं व्यापार तीनों का महत्व था किंतु अधिकांश लोग गॉव में रहते थे तथा मुख्यतः खेती करते थे। इस काल में भूमि का स्वामी होना सम्मान की बात थी। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह जिस भी व्यवसाय मे हो इस बात के लिये यत्नशील रहता था कि उसके पास कुछ अपनी जमीन हो जाय। गांव की जमीन गॉव वालों की थी और शेष जमीनों का समय–समय पर यहाँ के निवासियों में वितरण होता रहता था। कुछ भूमि पर पूरी तरह से राज्य का स्वामित्व था। ऐसी जमीनें प्रभुमान्यम् कही जाती थी। कर न चुका सकने के कारण, षडयंत्र करने या अन्य कारणों से राज्य द्वारा अधिगृहीत भूमि से ऐसी भूमि का क्षेत्रफल दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही रहता था। कुछ भूमि पर भू–स्वामित्व में भूमि पर कृषकों का अधिकारी होता था। इसे सामान्यतः कृषक भूमि या खुदकाश्त कह सकते है। राज्य इस प्रकार के भूस्वामित्व वाली जमीन से लगान व भूराजस्व प्राप्त करता था। कभी–कभी राजा किसी गांव को मंदिरों के लिए दान करता था। वहां के निवासी मंदिरों के लिए नियत नकद या उपज देते थे। यहां भी एक प्रकार का कर ही कहां जा सकता है।

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगे–

- पूर्व मध्यकाल की भू–राजस्व व्यवस्था के विविध आयामों के विषय में।
- विविध प्रकार के करों के विषय में।

1.2 भू–राजस्व व्यवस्था

चोलों के शासन काल में ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा बढ़ने तथा मंदिरों की संख्या में वृद्धि के फलस्वरुप ब्राह्मणों तथा मंदिरों के पास ज्यादा जमीने आती गयी। इसका परिणाम मंदिरों की सम्मपत्ति में वृद्धि के रुप में सामने आया। अब मंदिर अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने लगे व इनकी स्थिति मध्यकालीन चर्चो की भांति हो गयी। क्षेत्रफल बढ़ने के कारण अब इस प्रकार के भू–स्वामी व मंदिर या धार्मिक संस्थाए स्वंय जमीन पर खेती करने की स्थिति में न रह गयी, लिहाजा दूसरे लोगों को पट्टे पर जमीन दी जाने लगी व शर्त के मुताबिक उनसे भूमि का किराया उपज का हिस्सा लिया जाने लगा। उपज के हिस्से व किराये का निर्धारण जमीन की किस्म पर निर्भर करता था। जैसे अब कोई पट्टाधारक खेती के लिये बनायी गयी नयी जमीन पर खेती करता था तो पहले वर्ष उसे उपज का 1/10 भाग, दूसरे वर्ष 1/8 भाग कर तथा तीसरे वर्ष 1/7 भाग देना होता था। मंदिरो की जरुरत पड़ने पर ऐसे पट्टाधारकों को कर्ज तथा अकाल की स्थिति में अन्य सुविधाएं भी देता था। पट्टेदार को जमीन पर केवल खेती करने का ही अधिकार था वह इसे बेच नहीं सकता था। पूर्वमध्यकाल में भू–राजस्व व्यवस्था पर आर्थिक जीवन पर समसामायिक लेखों दानपत्रों साहित्यिक कृतियों तथा समकालीन व परवर्ती विदेशी यात्रियों के विवरणों से पर्यापत प्रकाश पड़ता है। पूर्व मध्यकालीन भू–राज्स्व व्यवस्था में कर व्यवस्था पर समकालीन अभिलेखों से पर्याप्त प्रकाश पडत्रता है। राज्य नियमित कर, आकस्मिक कर, अर्थ दण्ड, बंजर, वन, बाग आदि जैसे राजकीय आस्थानों से मिलने वाले कर, खदान निक्षेप तथा निःसंतान व्यक्तियों से प्राप्त करके द्वारा अपना कोष भरता था।

1.2.1 कर प्रणाली

राज्य को सर्वाधिक आय नियमित करों से होती थी। इसमें भूमिकर प्रमुख था। इस काल के लेखों में इसके लिए उद्रंग,पखु, कुडिमै आदि पदावलियों का प्रयोग किया गया है।

भूमिकर की दर सब जगह एक न थी। चोल लेखों से पता चलता है कि यहाँ सामान्यतः उपज का 1/6 हिस्सा भूमि कर लिया जाता था। जबकि राष्ट्रकूटों के यहां यह उपज का चौथा या पांचवा हिस्सा था। भूमि कर दर तय करते समय जमीन की किस्म तथा उसकी गुणवत्ता का निरिक्षण कराया जाता था। चोल व पल्लव लेखों मे इस बात के अनेकशः उल्लेख मिलते हैं चोलों के यहां जमीनों का 12 या इससे भी अधिक श्रेणियों में वर्गीकरण्र किया गया था। यह वर्गीकमरण फसलों के रदों बदल तथा उर्वरता के आधार पर किया जाता था। यदि कोई व्यक्ति परती जमीन को खेती योग्य पहली बार बनाता था तो उससे पहले वर्ष कम कर लिया जाता था। दूसरे वर्ष कुछ बढ़ा दिया जाता था। भूमिकर नकद व जिस दोनों रुपों मे किस्तों में वसूलास जाता था। राष्ट्रकूट लेखों से पता चलता है कि इसकेक लिए भाद्रपद (अगस्त–सितम्बर), कार्तिक (अक्टूबर–नवम्बर) तथा माघ माह (जनवरी–फरवरी) नियत थे। नियमित करों में भूतोवात्तप्रत्याय नामक कर का उल्लेख राष्ट्रकूट लेखों में मिलता है। यह ऐसा कर था जो उत्पादित तथा आयातित वस्तुओं पर लिया जाता था। कुछ लेखों में मक्खन तथा तारकोल पर लगे कर का भी उल्लेख किया गया है।

चोल लेखों में जुलाहों तेलियों, दुकानदारों, कुम्हारों व गड़ेरियों पर कर का उल्लेख किया गया है। पल्लव लेखों में दूध, गाय, तृण, ईधन योग्य लकडी, फल, फूल आदि से मिलने वाले करो का उल्लेख किया गया है। तेली, कुम्हार, शराब बनाने वाले व्यापारी, नमक खोदने वाले तथा धान्य विक्रेता से मिलने वाले करों का उल्लेख मिलता है। उत्पादन तथा आगम शुल्क नकद तथा जिंस दोनों रुपों में वसूला जाता था। मनु, वृहस्पति, गौतम व कौटिल्य के अनुसार 16प्रतिशत उत्पादक शुल्क लिया जाता था। इब्नबतूता के अनुसार बाहरवी व चौदहवीं शती ईव में आगम शुल्क की दर 25 प्रतिशत थी। नियमित करों में विष्टी या बेगार का भी उल्लेख मिलता है। हिन्दू राज्यशास्त्र के अनुसार राजा प्रजा को जो सुविधा देता है, उसके बदले वह प्रजा से कर लेने का अधिकारी है। किन्तु गरीब जनता नकद अथवा जिन्स के रुप में कर नहीं दे सकती। अतः इसके बदले शारीरिक श्रम (बेगार) लिया जाता है। राज्य इस प्रकार के श्रम का उपयोग तालाब,नहर, झीलें आदि की सफाई, शासकीय, निर्माण तथा कर के रुप में प्राप्त जिंस की तौलाई आदि से करती थी। उपर्युक्त नियमित करों के साथ–साथ इस

वर्ग में गृहकर, विवाह के अवसर पर देय कर, कुएं तथा तालाब के जल के उपयोग पर कर, आजीविकों पर लगाये कर आदि का उल्लेख। अण्हिलवाल के राजा सिद्धराज के समय वाहुलोद नगर से सोमनाथ मंदिर की यात्रा करने वाले पर लगाये जाने वाले कर उल्लेख मिला है। जिसे अपनी माता के कहने पर माफ कर दिया गया था। चोल लेखों से पता चलता है कि एक नाडु की जनता ने एक विष्णु मंदिर के लिए कुछ नये उपकर दने की जिम्मेदारी ली थी। इसमें प्रतिघर, प्रत्येक विवाह में वर–वधु के पक्ष से तथा शमशान से कर लेने की व्यवस्था थी। कांचीपुरम में मान नगरम् के अधीन तेलियों ने निश्चत किया कि मंदिर के प्रांगण में लगे हर कोल्हू का मातिक मंदिर को द्वीप जलाने के लिए चंदा दे। सरकार गांव की रक्षा के लिए कुछ नियमित कर्मचारी रखती थी। इसके लिए जनता से कर लिया जाता था। परवर्ती काल में यह काम सामन्त करने लगे।

1.2.1 राजकीय कर

गॉव की कुछ खास प्रकार की जमीने जैसे बंजर, जंगल, खास प्रकार के पेड़ राजकीय सम्पत्ति माने जाते थे और राज्य इनसे अत्यधिक आमदनी होती थी। पल्लव लेखों में कांची के समीप चार जंगलों के दान दिय जाने का उल्लेख है। दकन में चंदन वृक्ष राज्य के अधीन थे। खनिज भंडारो तथा नमक पर अधिकाशतः राज्य का अधिकार था और इससे पर्याप्त कर मिलता था। राष्ट्रकूट लेखों में इस प्रकार की आमदनी के प्रसंग मे सहाभ्यन्तरसिद्धि पद का प्रयोग किया गया हैं। जमीन के अंदर गड़े खजाने पर राज्य का अधिकार था। राजकीय कर्मचारी के अलावा भी यदि कोई व्यक्ति जमीन के अंदर गड़ा कोई खजाना पाता था तो उसे अनिवार्यतः राज्य को देना पड़ता था। नियमित करों के साथ–साथ राज्य को आकस्मिक कर भी मिलता था। सैन्याभियानों के सिलसिले में जब सैनिक किसी गांव में जाते थे या रुकते थे तो उनके रखरखाव की जिम्मेदारी गांव वाले निभाते थे। इस प्रकार के कर को चाटभाट प्रवेश दण्ड कहा गया है। देवगिरि से प्राप्त एक लेख (दशवी शती) से ज्ञात होता है कि

महासामन्ताधिपति शन्तिवर्मा द्वारा पलरुर के निवासियों से हाथियों तथा घोड़ो के लिए घास की मांग की गयी थी। ए0एल0 अल्टेकर का विचार है कि अर्थशास्त्र में उल्लेखित सेनाभक्तम् का सम्बन्ध इसी प्रकार के कर से हे। राजा जब किसी गांव में रुकने के बाद वहां से विदा लेता था तो वहां की जनता उसे उपहार देती थी। सरकारी आदेश लेकर जब कोई कर्मचारी किसी गांव में जाता था, तो उसे भी शुल्क मिलता था। राजा सामन्त तथा अधिकारी जन्मोत्सव या विवाह आदि के मौके पर प्रजा से भेंट प्राप्त करते थे। अर्थशास्त्र में वर्णित उत्संग इसी कोटि का कर था। कई ग्रंथों में आपातकालीन कर का भी उल्लेख किया गया है। परान्तक– I के 38वें शासन वर्ष में तिरुक्कुउक्विकल की ग्राम सभा पर पाण्डिय–पडै (पाण्ड्य सेना) के लिए एक विशेष प्रकार का चंदा लगाया गया था। यह एक ऐसी उगाही थी जो युद्ध काल में लगायी जाती थी। वीर राजेन्द्र ने वेंगी के युद्ध में होने वाले व्यय के लिये अपने राज्य में प्रति वेल्लि एक कलंजु का कर लगाया था। राज्य की आमदनी का एक स्रोत दण्ड अर्थदण्उ भी था। हालांकि इससे राज्य को कोई विशेष आर्थिक लाभ नहीं होता था, क्योकि इससे प्राप्त धन का बड़ा हिस्सा न्यायिक कार्यो पर खर्च होता था। पूर्वमध्यकाल मे नियमित रुप से विभिन्न प्रकार के उच्च अधिकारियों, सामन्तों, मंदिरों तथा कर्मचारियों की सहायता से विभिन्न प्रकार के करों की उगाही करते थे। इन्हें एक मुश्त तथा किस्तों दोनों में वसूला जाता था। इस काल में कर वसूलने में सख्ती बरती जाती थी और कभी–कभी अत्याचारी तरीके भी अपनाये जाते थे। वह्वादेयम मन्हेद्रमंगलम की सभा ने एक लेख यह लिखवाया था कि कर वसूलने में उसके साथ इतनी सख्ती की गयी कि वह बर्दाश्त नहीं कर सका। इन्हें पानी में डुबाया गया तथा धूप में खड़ा किया गया। इसी प्रकार राजेन्द्र– II ने शासन के तीसरे वर्ष में जबै गांव में किसी महिला के साथ कर वसूलने में इतनी ज्यादती की गयी की उसने जहर खाकर आत्महत्या कर ली। कभी–कभी अधिकारी जनता पर तरह–तरह के अत्याचारपूर्ण कर लगा देता था।

सांराश

बोध प्रश्न

1. पूर्व मध्यकालीन राजस्व व्यवस्था पर टिप्पणी लिखिए।

   .....

   .....

   .....

2. विभिन्न प्रकार के करों का वर्णन कीजिए।

   .....

   .....

   .....

सहायक ग्रन्थ

1. डॉ. राम शरण शर्मा, पूर्व मध्यकालीन भारत का सांमती समाज एवं संस्कृति,दिल्ली, 2009

इकाई–3–पूर्व मध्यकालीन व्यापार एवं उद्योग

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्‌देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 व्यापार–वाणिज्य

3.2.1 व्यापारी निगम

3.2.2 विनिमय एवं मुद्रायें

3.2.3 मूल्य

3.2.4 ऋण तथा व्याज

3.2.5 विदेशी व्यापार

3.3 उद्योग

3.3.1 वस्त्रोद्योग

3.3.2 धातु उद्योंग

3.3.3 मणि उद्योग

3.3.4 नमक उद्योग

3.3.5 तेल उद्योग

3.3.6 नारियल उद्योग

3.3.7 मोती तथा सीप उद्योग

3.4 सारांश

3.5 बोध प्रश्न

3.6 सहायक ग्रन्थ

3.0 प्रस्तावना

पूर्व मध्यकाल भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण काल माना जाता है। राजनीतिक दशा के आधार पर व्यापार–वाणिज्य की स्थिति निर्धारित होती थी। राजनीतिक विखंडन की स्थिति ने भी इस पर प्रतिकुल प्रभाव डाला। परवर्ती गुप्त काल तक पुरातात्विक अवशेष नही प्राप्त होते है। इस काल में विविध क्षेत्रों में अनेक परिवर्तन दृष्टिगत होता है।

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त शिक्षार्थी जान सकेगें–

- पूर्वमध्यकालीन व्यापार एवं उद्योग के विषय में।
- पूर्वमध्यकालीन विदेशी व्यापार के विषय में।

3.2 व्यापार–वाणिज्य

पूर्वमध्य काल में भिन्न–भिन्न देशों के साथ व्यापार होते थे। व्यापार मुख्यतः थल तथा जल दोनों मार्गो से होते थे। विदेशों के साथ जो व्यापार होता था वह मुख्यतः चल ही मार्गो से होता था। पूर्वी चालुक्य वंश के शक्तिवर्मा की अनेक मुद्राएं वर्मा व स्याम से मिली हैं। सुमात्रा से लोबुवुआ से 1088 ई0 का एक लेख मिला है जिसमे तमिल प्रदेश के व्यापारी संघ का उल्लेख है। भारत के इन देशों को कस्तूरी, अगर, कपूर अनेक प्रकार के मोती, गरम मसाले, जायफल, लौंग, हाथी दाँत, तलवार आदि व्यापारियों केक द्वारा भेजी जाती थी। व्यापारियों के अपने संघ व नेता होते थे। ये सभी लोग एक साथ ही दूसरे देशों की यात्रा करते थे। इनके जहाजों पर आवश्यकता की सभी सामग्रियाँ उपलब्ध रहती थी।

3.2.1 व्यापारी निगम

व्यापारी अथवा वणिक सामान्यतः शक्तिशाली निगमों अथवा क्षेणियाँ में सघटिक थे। ये प्रायशः राजनीतिक गतिविधियाँ से अलग रहते थे। इन पर इनके आस–पास होने वाले युद्धों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। इनमें मणिग्रामम, नायादेशिन (गानादेशी) अथवा एण्णुडडुवर बलजियर बलैंग, अज्जुषण्, तेलिन आदि लेखों में मिलता है। काकतीयों के लेखों में स्वदेश बेटारुलु, पददेश, बहारुलु तथा नाना देशिन् नामक तीन प्रकार के व्यापारियों का उल्लेख किया

है। स्वदेश बेहारुलु अपने देश के व्यापारी थे। पर देश बेहारुलु दूसरे देश के व्यापारी थे तथा नाना देशिन् में विभिन्न देशों के व्यापारी थे। स्वदेश बेहारुलु एक प्रकार के स्थानीय व्यापारी थे। ये स्थानीय संघों (नगरम) में गठित थे। ये अधिकाशंतः नगरों मे रहते थे और विशिष्ट श्रेणियाँ से समबिन्धत थे। पर देश बेहारुलु दूसरे देश से आने वाले व्यापारी थे। ये व्यापर के साथ तीर्थ यात्राओं तथा उत्सवों में सम्मिलित होने के लिये भी आते थे। विदेशी व्यापारी में सभी देशों के व्यापारी होते थे। व्यापारी का व्यापरियों के स्थानीय संगठनों को नगरम कहा जाता था। इस प्रकार के संगठन कांचीपुरम तथा मामल्लपुरम जैसे बड़े नगरों में कार्यरत थे। इनका सम्बन्ध उन निगमों से था जो विशिष्ट नामों से जाने जाते थे। इनके तथा दूसरे बड़े निगमों के बीच किस प्रकार के सम्बन्ध थे स्पष्टतः ज्ञात नहीं है एण्णारियम के दक्षिण बाजार में बलंजियराँ के साथ–साथ ब्राह्मणों के भी व्यापार कार्य में लगे होने का उल्लेख मिलता है। नगरम् विशेष कार्यो के लिए अपने सदस्यों से धन भी इकठ्ठा करता था। एक अभिलेख से पता चलता है कि वलैमूर के नगरम ने दीपदान के व्यय निमित्त आपस में चंदा लगाया था। व्यापारिक निगमों तथा राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में कुछ स्पष्टतः ज्ञात नहीं हैं

3.2.2 विनिमय एवं मुद्रायें

पूर्वमध्यकाल में भारत में सर्वत्र लेन–देन विनिमय तथा मुद्रा दोनों की सहायता से किये जाते थे। विनिमय के प्रथा आमतौर पर ग्रामीण इलाकों में थी। यहाँ धान की एक निश्चित इकाई को विनिमय का आधार माना प्रथा आमतौर पर ग्रामीण इलाकों में थी। यहाँ धान की एक निश्चित इकाई को विनिमय के रुप में इस्तेमाल किया गया था। चोल लेखों से पता चलता है कि तमिल प्रदेश में विनिमय का जोर–शोर से प्रचार प्रसार था। राष्ट्रकूट लेखों से ज्ञात होता है कि इस युग में शासक राजस्व अनाज अथवा उत्पादन एवं नकद दोनों रुपों में वसूल करता था। इसमें अंदाज लगता है कि इनके यहाँ भी विनिमय का प्रचार–प्रसार था। बड़े लेन–देन दूर के व्यापार तथा तटीय व्यपार में प्रायः मुद्रा प्रयुक्त की जाती थी। पूर्व मध्य भारत के विभिन्न भागों में सोने–चांदी तथा तॉबे की मुद्रा प्रचलित थी। 'अभिलेखों' में स्वर्ण तथा रजत मुद्राओं का उल्लेख किया गया है। इस युग की प्रचलित मुद्राओं में बेल, द्रम्म, चिनककनकम, सुवर्ण धरण, दीनार, हग, गण्याक, हण, कंलजु काणि, काशु, कगिनी, पण, पोन,

माडै, कार्षापण आदि प्रमुख थी। द्रम यूनानी द्रव्य का संस्कृत रुपान्तर प्रतीत होता है। हिन्द–यूनानियों की रजत मुद्राएं जिनका वनज लगभग 65ग्रेन था इसी नाम से जाना जाती थी। ए.एस. अल्टेकर का विचार है कि लेखों में उल्लिखित द्रम्म संभवतः यही है। राष्ट्रकूट प्रथम अमोधवर्ष के समय के कान्हेरी अभिलेख में सुवर्ण द्रम्म का जिक्र आया है। इससे पता चलता है कि द्रम्म एक प्रकार का पारिभाषिक शब्द था जो सोने तथा चाँदी दोनों की मुद्राओं के लिए प्रयुक्त किया जाता था। चतुर्थ गोविन्द के सम्भात् अभिलेख में सुवर्ण का उल्लेख किया गया है। इसका वनज कितना कितना था ठीक–ठीक पता नहीं है। कौटिल्य मनु आदि ने सुवर्ण का भार 80 रत्ती अर्थात 146ग्रेन माना है।

3.2.3 मूल्य

पूर्व मध्यकाल के लेखों में वस्तुओं के मूल्यों पर प्रकाश पड़ता है। और हम देखते हैं कि 10वीं शती ई0 से लेकर 17वीं शती ई0 तक दक्षिण भारत में वस्तुओं के मूल्य में कोई खास वृद्धि नहीं हुई क्योंकि 10वी शती ई0 में एक रुपये में 30–32 सेर (लगभग 28–30 किलोग्राम) चावल मिलता था जबकि 17वीं शती ई0 के प्रारम्भ में भी चावल का मूल्य यही था। ए0एम0 अल्टेकर के अनुसार 10वी शती ई0 से 19वी शती ई0 के मध्य तक मूल्यों में मात्र 50प्रतिशत की वृद्धि हुई। किन्तु वस्तुओं का मूल्य सदा एक सा नहीं रहता था। अलग–अलग क्षेत्रों में भी मूल्यों में अंतर था। राज्य जब कभी किसी विशेष उत्पादन पर कर बढ़ा देता था तो उस वस्तु का मूल्य भी बाजार में स्वाभाविक रुप से बढ़ जाता था। इसी प्रकार जो वस्तुएं आयात की जाती थी उसका मूल्य भी उस पर लगाए गये कर पर निर्भर करता था।

3.2.4 ऋण तथा ब्याज

व्यापार वाणिज्य में लगातार उन्नति से पूंजी की आवश्यकता बढ़ती गयी। इसके लिये व्यापारी व्यावसायिक संगठन तथा अन्य जरुरतमंद लोग ऋण का सहारा लेने की जरुरत पड़ती थी।

3.2.5 विदेशी व्यापार

आंतरिक की अपेक्षा पूर्वमध्य काल में विदेशी व्यापार अधिक विकसित था। ईसवी सन् के पूर्व इसकी प्रारम्भिक शताब्दियों से ही दक्षिण भारत के विदेशों में अच्छे व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गये थे। उसकी सूचना संगम साहित्य, क्लासिकी लेखकों के विवरणों तथा पूर्वमध्य भारत में उपलब्ध भारत में उपलब्ध अन्याय पुरातात्विक अवशेषों से मिलता है। पेरिपल्स ऑव द इरीथ्रियन सी में भारत एवं रोम के बीच होने वाले व्यापार की विस्तृत चर्चा की गयी है तथा नौरा मुजिरिस नेलसिड़ा का पश्चिमी के तट के सुप्रसिद्ध एवं व्यस्त बंदरगाहों के रुप में उल्लेख किया गया है। इसमें लिखा है कि इन बाजारों में कालीमिर्च तथा मेलावयरम् मिलता था जिसके कारण विदेशों से बड़े–बड़े जहाज आया करते थे। भारत उस समय मुख्य रुप से सिक्के, पुखराज, तन्तु वस्त्र छपे हुआ कपड़े, सुरमा, मूंगा, शीशा, तांबा, टिन, शराब आदि का आयात करता था तथा कालीमिर्च, मोती, हाथी दाँत, रेशमी कपड़ा, जटामासी, पारदर्शी पत्थर, मेलावयरम्, हीरा नीलमणि आदि का निर्यात करता था। पूर्वमध्य के आन्तरिक भागों में उपलब्ध रोमन मुद्राएं इस बात की साक्षी है कि इस समय इन भू–भागों में पर्याप्त संख्या में रोमन व्यापारी रहते थे। तथा उनकी बस्तियाँ थी। भारत एवं रोम के बीच यह व्यापारिक सम्बन्ध कम से कम आगस्टस के काल से अवश्य शुरु हो गया था। क्योंकि इन मुद्राओं पर इसकी मुहरें मिली हैं। आगस्टस के बाद इस दिशा में और प्रगति हुई और व्यापार मात्र कुछ विलासिता की वस्तुओं तक ही सीमित न रहकर अन्य क्षेत्रों में भी बढ़ा।

3.3 उद्योग धन्धे

पूर्व मध्यकालीन समाज में विभिन्न प्रकार के उद्योग–धन्धों का प्रचलन हुआ थां। वस्त्र उद्योग अपनी प्रगति पर था। देश के विभिन्न भागों में उत्तम प्रकार के सूती तथा रेशमी वस्त्रों का निर्माण किया जाता था। वस्त्रों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की धातुओं, सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, शीशा, पीतल, टिन आदि की सहायता से अस्त्र–शस्त्र, बर्तन, आभूषण आदि तैयार किये जाते थे। चाऊ–जू–कूआ के विवरण से पता चलता है कि ईसा की 10वीं–12वीं शताब्दी में भारतीय गरम मसाले तथा विलासिता की सामग्रियों की चीन में माँग काफी बढ़ गयी।

अरब लेखकों के विवरण से पता चलता है कि भारत से चंदन, कपूर, चीनी, नारियल, कपास, हाथी दॉत की वस्तुयें, मोती, विल्लौर, गोलमिर्च, शीशा आदि वस्तुये अरब देशों को व्यापारियों द्वारा ले जाई जाती थी। मार्कोपोलो दक्षिण भारत के उन व्यापारियों का उल्लेख करता है जो अरब व्यापारियों के साथ मिलकर घोड़ों के आयात पर एकाधिकार जमा रखे थे। उसके अनुसार भारत के लोग घोड़े पालना नहीं जानते थे तथा उन्होंने इसका आयात सदैव विदेशों से किया। कृषि एवं पशुपालन के साथ–साथ अधेतव्य काल में पूर्व मध्यकाल में नाना प्रकार के उद्योग एवं व्यवसाय प्रचलित थे। सामान्यतः विभिन्न उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तुओं की खपत स्थानीय बाजारों में होती थी। पर व्यापारियों के एक भाग से दूसरे भाग में आवागमन तथा विभिन्न भागों में विकसित व्यापरिक संगठनों एवं नियमों की उपस्थिति से यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि कुछ उत्पादन आन्तरिक व्यापार के मूलाधार थे। इस पूर्ण युग के उद्योगों में धातु उद्योग नमक उद्योग, वस्त्रोद्योग, मृदभाण्ड उद्योग, तेल उद्योग तथा मोती, सीप उद्योग विशेष रुप से उल्लेखनीय है।

3.3.1वस्त्रोद्योग

वस्त्रोद्योग अधेतव्य काल में पूर्व मध्यकाल भारत का एक प्रमुख उद्योग था। राष्ट्रकूटों ने तो इसमें विशिष्टता हासिल कर ली थी। इसमें जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा आपनी जीविका चलाता था। कताई, बूनाई, छपाई, कढ़ाई आदि कार्यो में अनेक पुरुष, स्त्रियाँ तथा बच्चे लगे थे। मानसोल्लास में नागपत्तम, चोलदेश अन्हिलवाड़, मूलस्थान (मुल्तान), कलिंग तथा वंग में निर्मित वस्त्रों का उल्लेख किया गया है। तेलुगु देश में मकड़ी के जाल के समान महीन सूत का उत्पादन होता था। और चाऊ–कोऊ–तोऊ के अनुसार मलाबार में छीट तथा सफेद सूती कपड़ा बनाया जाता था। मार्कोपोलो ने भी मालाबार में सुन्दर बुकरम बनाये जाने की बात लिखी है। अरब यात्री इब्र सईद के अनुसार मदुरा (माबर) में सूती तथा रेशमी वस्त्रों की धुलाई तथा छपाई का काम बहुत अच्छा होता था तथा यहाँ से अत्यन्त महीन कपड़े का निर्माण किया जाता था। चोल देश के उत्पादनों की चर्चा करते हुए चाउ–जु–कुआ इसके सूती कपड़ों जिन पर सिल्क के धागे रहते थे तथा अन्य वस्त्रों का उल्लेख करता है चीनी स्रोतों से पता चलता है कि चार पाँच फुट चौड़े और बारह तेरह फुट लम्बे रेशमी कपड़े का

मूल्य सौ स्वर्ण मुद्रा के बराबर या पूर्व मध्यकाल में वस्त्रों की देश के आन्तरिक भागों के साथ–साथ बाहर भी मांग थी। देश के विभिन्न भागों में स्थित बन्दरगाहों से महीन कपड़े के निर्यात की बात प्रमाणित होती है।

3.3.2 धातु उद्योंग

इस काल में धातु उद्योग सर्वाधिक विकसित था। तॉबा, लोहा, चांदी, सुवर्ण, सीसा, पीतल, टिन आदि उद्योग प्रचलित थे। कुद्दपह, बेल्लारी, बीजापुर, धारवाड़ तथ चांदा जिलों से तांबा निकाला जाता था। वेल्लारी, कुद्दपह तथा अनन्तपुर में हीरे की खाने थीं। इनकी सहायता से आयुध भाण्ड, आभूषण आदि बनते थे। आयुध निर्माण में प्रयाशः लोहा उद्योग का उपयोग किया जाता था। लोहे से सम्बिन्धत दूसरा उद्योग शहतीर (बीम) बनाने का था। इनका उपयोग भुवनेश्वरी पुरी तथा कोणार्क के मंदिरों में किया गया है। तॉबे तथा कांसे का उपयोग मुड़ा बर्तन तथा मूर्ति बनाने में किया जाता था। पल्लव तथा चोल राज्यों में निर्मित कांसे की मूर्ति दक्षिण भारत के धातु उद्योग की परिचालक है।

3.3.3 मणि उद्योग

भारत पुंरातन कला से मणियों के लिये प्रसिद्ध रहा है। प्राचीन ग्रंथों में इसके प्रायशः उल्लेख मिलते हैं। कादम्बरी, हर्षचरित, अमरकोश आदि में अनेक प्रकार के हीरे, मोतियों की सीप, सीपी, मूंगा, पुष्पराग, नीलम, लापवर्ड आदि का उल्लेख मिलता है। इनमे ये रत्न गिनाये गये है, व्रज, मकत, पद्यराग, मुम्ता, महानील, इन्द्रजीत, गद्यसत्य, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, स्फटिक, पुलक, ककेतन, पुष्पराग, ज्योतिरस, राजपट्ट, राजमय, शुभसौगान्धिक, गंज, शंख, ब्रह्मय, गोमेद, रुधिरास, भल्लातक, धूली मरकत, तुष्यक, सीसा, पीलु, प्रवाल, गिरिवज्र, भुजंगमणि, वज्रमणि, टिट्टिभ भ्रामर तथा उत्पल। इसी प्रसंग में पुराणकार ने हीरा मकृत मोती, इन्द्रनीमणि तथा वैद्र्य के गुण दोषों का विवेचन भी किया है। अद्येतव्य काल के कोश ग्रंथों का यथा वैजयन्ती अभिधान चिंतामणि में स्फटिक, सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त, मरकत, पन्ना, मणिक, मूंगा, हीरा, नीलम, लाजवर्द तथा मोती का उल्लेख मिलता है। मानसोल्लास में से इन मणियों के प्राप्ति स्थल तथा इनके मणियों प्राप्ति स्थल तथा इनके गुणों का विवेचन किया गया है।

तंजोर मंदिर के लेखों में हीरा, माणिक्य तथा मोतियों की विभिन्न किस्मों और दोषों का वर्णन किया गयाय है। प्रथम राजराज ने जो आभूषण मंदिरो के लिये दान किया था इसमें कोई सौ मणियों वाली अंगूठियाँ थी। जिनमे प्रत्येक में हीरा, नीलम मोती, पद्मराग, पुष्पराग, मूंगा, पन्ना, लाजवर्द तथा सिनेमन स्टोन लगा था। मार्कोपोलो ने लिखा है कि वारंगल में हीरे बहुतायत से पाये जाते थे। बेल्लारी, अनन्तपुर तथा कुद्दपह में हीरे की खाने थी। मालखंड जवाहरात के अच्छे बाजार थे।

3.3.4 नमक उद्योग

पूर्वमध्य में नमक उद्योग भी बड़े पैमाने पर प्रचलित था। समुद्री पानी से नमक बनाने का काम राजकीय संरक्षण में संरक्षण में सम्पन्न किया जाता था। इसपर स्थानीय तथा केन्द्रीय उपकर लगता था। इसे नकद अथवा जिसों मे वसूल किया जाता था। इसके सरकार को अत्याधिक आमदनी होती थी। नमक उद्योग ज्यादातर सपुड़ी इलाकों में प्रचलित था। मकणिम् कन्याकुमारी, वारियूर, गुण्ड्र, दक्षिण अर्काट, आयतुरे आदि इसके प्रमुख केन्द्र थे।

3.3.5 तेल उद्योग

तेल उद्योग भी पूर्वमध्य भारत का एक प्रमुख उद्योग था। इसका खाने, जलाने तथा शरीर में लगाने में विशेष रुप से उपयोग किया जाता था। पूजा तथा मंदिरों में इसके बिना काम ही नहीं चलता था। लेखों में तेलियों में के सेंधों का उल्लेख मिलता है। चोल अभिलेखों में तेलियों पर लगाये जाने वाले कर को पेर्वीर तथा कोल्टू पर लगाये जाने वाले कर को कडमै कहा गया है। अभिलेखों में तेल निकालने वाले कोल्हू को एतुगान कहा जाता था। मिंतुगान नामक कोल्हू वाले जो तीसरे प्रकार का था अपेक्षाकृत व्यापारी काफी बड़ा होता था। कैगान पर भिंतुगान का आधा केन्द्रीय उत्पाद शुल्क लगता था।

3.3.6 नारियल उद्योग

कृषि उत्पादित उद्योगों में अधेतव्य काल में नारियल उद्योग भी बड़े पैमाने पर प्रचलित था। नारियल एक प्रकार से दक्षिण भारत के लिए कल्पवृक्ष और वर्तमान में समग्र तटीय अर्थव्यवस्था का मूलाधार है। कहा जाता है कि उसे मलेशिया से लाया गया था। ईसा पूर्व

पहली शती में ये पूर्वी तट पर लगाये जा रहे थे। एक शती बाद पश्चिमी तट पर पहुंच गया। एक इतिहाकार ने लिखा है कि नारियल के फल पत्ते, टहनी, तने, रस आदि के लगभग साढ़े तीन सौ उपयोग होते हैं।

3.3.7 मोती तथा सीप उद्योग

पूर्वमध्य काल में मोती तथा सीप उद्योग भी बड़े पैमाने पर चलता था। महाभारत तथा अर्थशास्त्र में पाण्ड्यवाटक का उल्लेख किया गया है। महाभारत के अनुसार युधिष्ठिर के राज्यभिषेक के अवसर पर पाण्ड्य तथा चोल देश के शासकों ने मणि तथा भेट किया था। अर्थशास्त्र में मोतियों की उत्पत्ति के प्रसंग में ताम्रपर्णिक (पाण्ड्य देश की ताम्रपर्णी नदी के संगम पर उत्पन्न) तथा पाण्ड्यवाटक (मलयकोटि पर्वत पर उत्पन्न) मणियाँ किया गया है। इन बड़े पैमाने पर चलाने वाले उद्योगों तथा व्यवसायों के अलावा बर्तन बनाने, बढ़ईगीरी, पशुपालन पत्थर काटने, बाल बनाने, टोकरी बनाने, कपड़ा धोने तथा चमड़े से संबंधित अनेक अन्य छोटे मोटे उद्योग भी प्रचलित थे।

3.4 सारांश

3.5 बोध प्रश्न

1. पूर्वमध्यकालीन व्यापार एवं वाणिज्य के विविध आयामों का वर्णन करें।

2. विदेशी व्यापार के महत्व का वर्णन करें।

3.6 सहायक ग्रन्थ

इकाई 4 पूर्व मध्यकालीन ग्राम एवं नगर

इकाई की रूपरेखा

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 पूर्व मध्यकालीन ग्राम एवं नगर

4.2.1 गाँव

4.2.2 नगर

4.3 सारांश

4.4 बोध प्रश्न

4.5 सन्दर्भ/उपयोग पुस्तके

4.0 प्रस्तावना

पूर्व मध्यकाल अर्थात् 5वीं सदी से 11वीं 12वीं सदी के काल में ग्रामों और नगरों के स्वरूप उनकी उत्पत्ति और नामकरण के आधार पर उनकी सटिक स्थिति का अनुमान नगाना कठिन है। किसी भी बस्ती को ग्रामीण या शहरी कहने का आधुनिक पैमाना पूर्व मध्यकालीन नगरों व ग्रामों में सटिक नही बैठता है। तत्कालीन लेखों व पुरातात्विक स्रोतों से इस काल में मौर्य या मौर्यैत्तर कालीन भव्य नगरों से इस काल में नगरीय जीवन में गिरावट के साक्ष्य प्राप्त होते है। सामंतीकरण और बदलते समाज व्यवस्था का इस पर प्रभाव पड़ना परिलक्षित होता है। पूर्व मध्याकालीन ग्राम और नगर का स्वरूप की उपादेयता इस इकाई में समझने का प्रयास है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से आप जान सकेंगे :–

- पूर्व मध्यकालीन ग्राम और नगर कैसे अलग मानवीय जीवन को प्रदर्शित करते थे।
- ग्रामों से नगरों में संक्रमण कैसे होता है।
- मानवीय बस्तियों से ग्राम और फिर नगर ग्राम से नगर के विकास के लिए उत्तरदायी कारण क्या होते थे।

4.2 पूर्व मध्यकालीन ग्राम एवं नगर

4.2.1 गाँव

गाँवों के लिए सामान्यतः ग्राम शब्द का प्रयोग किया गया। परन्तु सभी ग्रामीण बस्तियाँ एक समान नहीं थी। हमें ऐसे दूसरे शब्दों के विषय में भी जानकारी है जो मिन्न प्रकार की ग्रामीण बस्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। पाटि को सामान्यतः आदिवासी गाँव के लिए प्रयोग किया जाता था। पटका से गाँव के एक भाग का बोध होता है। यह एक छोटे गाँव या पुरवा को इंगित करता है परन्तु वास्तव में यह एक बड़े गाँव का ही एक भाग था। एक ही गाँव की

सीमाओं के अन्तर्गत कई पटकों या पुरवों के पैदा हो जाने से स्पष्ट हैं कि कृषि का प्रसार हुआ। चरवाहा की बास्तियों को योष कहा जाता था। परन्तु यह याद रखा जाना चाहिए कि ये शब्द जो विभिन्न प्रकार की बस्तियों का प्रतिनिधित्व करते थे सदैव परिवर्तित होते रहते थे। कृषि एवं ब्राह्मणिक संस्कृति के प्रसार के कारण आदिवासियों की बस्तियों के चरित्र में भी परिवर्तन हो गया था। कुछ गाँव ऐसी जगहों पर बस गए जहाँ एक बिन्दु पर ग्रामीण बस्तियों का एक समूह मिलता था और वे बड़ी बस्तियों में तब्दील हो गए ।

वास्तव में 9वीं सदी ई. से कुछ इस प्रकार की बड़ी बस्तियां नगरीय केन्द्रों में परिवर्तित होनी प्रारंभ हो गई। यहाँ पर यह याद रखना होगा कि बस्तियों के नामों से इस प्रकार के परिवर्तन सदैव प्रकट नहीं होते थे। यहां तक कि अगर कोई ग्रामीण बस्ती अपने आकार तथा चरित्र में बदल जाती थी परन्तु उसके प्रारंभिक ग्रामीण नामों का प्रयोग जारी रहता था। गाँवों के अपने संस्कृत तथा गैर–संस्कृत नामों से ऐसा प्रतीत होता है कि ये आदिवासी छोटे गाँव थे जिनका क्रमिक रूप से संक्रमण कृषि ग्रामों में तथा संस्कृत नाम वाले गाँवों में ब्राह्माणिक संस्कृति एवं विचारधारा का प्रसार हुआ ।

गाँव का निर्माण कैसे होता था? "सामान्यतः" एक गाँव के अन्तर्गत निवास स्थल (वस्तु), खेती–बाड़ी वाली भूमि (क्षेत्र) और बिना जुताई वाली भूमि आती थी। भूमि की इस अंतिम श्रेणी के अंतर्गत चारागाह मैदान (गौचर) और जंगल सम्मिलित थे ।

गाँवों की सीमाओं का निर्धारण करना एक समस्या थी क्योंकि इनकों कभी भी स्पष्ट रूप से पारिभाषित नहीं किया जाता था ।

जैसा कि अब हम उस समय में प्राकृतिक सीमाओं जैसे कि पर्वतों या नदियों को ही गाँवों की सीमाएं मान लिया जाता था। परन्तु जहाँ बस्तियाँ एक गाँव की स्थलीय सीमाओं से जुड़ती थीं वहाँ पर सीमाओं को पड़ोसी गाँवों का उल्लेख करके निश्चित किया जाता था।

उत्तरगुप्त काल की बहुत सी ताँबे की प्रक्षाओं में, जिनको भूमि–अनुदान करते हुए जारी किया गया, भूमि की विभिन्न किस्मों का उन्लेख किया गया है। जिनके अंतर्गत खेती योग्य,

बिना जुताई वाली, ऊँची, नीची, पानी ग्रहण करने वाली, दलदली, हरि और जंगल वाली भूमि शामिल थी।

जमीन की उत्पादकता तथा भूमि के गुण को सम्भवता इस प्रकार की उल्लिखित किस्मों के आधार पर ही निश्चित किया गया। भूमि की किस्मों के इस भाँति के विस्तारपूर्वक विवरण से स्पष्ट है कि कृषि एवं पशुपालन का महत्व बढ़ने लगा था।

जिन ग्रामों को ब्राह्मणों को अनुदान में दिया गया उनको "ब्रह्मेदय" और "अग्रहर" के नाम से जाना जाता था।

जिन गाँवों को ब्राह्मणों ने दान स्वरूप प्राप्त किया था। उन गाँवों में ब्राह्मणों के साथ–साथ गैर–ब्राह्मण लोग भी रहते थे। पस्तु इस प्रकार के गाँवों में सम्पति के अधिकार केवल ब्राह्मणों को प्राप्त थे। दक्षिण भारत में भी इस प्रकार के गाँवों को मंगल के नाम से जाना जाता था। दक्षिण भारत में दोनों प्रकार की ब्राह्मणिक बस्तियाँ प्रशासनिक तथा सामाजिक, संगठन के स्तर पर गैर– ब्राह्मणिक साधारण ग्रामों से भिन्न थी।

सभाएँ ब्राह्मणों की बस्तियाँ का प्रतिनिधित्व करती थीं। जबकि उर साधारण ग्रामीण बस्तियों का प्रतिनिधित्व करती। देश के किसी भी भाग की इन दोनों प्रकार की बस्तियों के बीच अनुपातिक विभाजन करना एक कठिन कार्य है। जैसा कि हम जानते है कि साधारण ग्रामों का खूब अनुदान ब्राह्मणों को दिया जाता था। इन सबके बावजूद भी यह कहा जा सकता है कि दान किए गए गाँव ग्रामीण बस्तियों का केवल एक भाग ही बनाते थे।

4.2.2 नगर

व्यापार का ह्रास, सिक्कों की कमी, सिक्के के सांचों तथा वाणिज्य मोहरों की अनुपस्थिति आर्थिक ह्रास एवं निर्मित उत्पादों की मांग में कमी की ओर इशारा करते हैं। जो नगर उत्तर–मौर्य काल में दस्तकारी उत्पादन के सक्रिय केन्द्र थे वे इस काल में निष्क्रिय एवं निर्जन्य हो गए। उत्तर भारत में जो नगर परवर्ती–कुषाण एवं कुषाण काल से तथा दक्कन में जोसातवाहन शासन काल से जुड़े थे उनका ह्रास तीसरी सदी ई० के मध्य या चौधी सदी ई०

से प्रारम्भ हुआ। जो उत्तरी भारत, मालवा और दक्कन के लिए सत्य था। वहीं दक्षिणी भारत के लिए भी समान सत्य था।

वास्तव में नगरीय जीवन का ह्रास दो चरणों में हुआ। प्रथम का सम्बन्ध गुप्त शक्ति के उदय के दूसरे पहलू के साथ जुड़ा था। इस काल के नगरों जैसे कि संघोल, हस्तिनापुर, अंतरजीखेड़ा, मथुरा, सौंठ, श्रावस्ती, कौशाम्बी, तमलुक आदि के उत्खनन से स्पष्ट है कि गंगा के ऊपरी तथा मध्य मैदानों के नगरों का ह्रास होना प्रारंभ हो गया था।

राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र के प्रारंगिक सम्पन्न केन्डों जैसे कि नाँह, उज्जैन, नागर, पौणी, तेर, भौकरदन, पैंठन आदि नगरों में भी इसी प्रकार का झुकाव देखने को मिलता है। तमिलनाडु में अरिकामेड, आन्ध्र प्रदेश तथा कर्नाटक के सातवाहन काल के केन्द्र भी इस विशेषता के अपवाद नहीं थे।

चौची सदीं से छठीं सदी तक के इस प्रकार के प्राचीन केन्द्रों के निवास स्थलों की दीवारें प्रारंभिक शताब्दियों की तुलना में काफी पतली, खस्ता हालत एवं कम माल प्रयोग किए गए अवशेष हैं। बहुत से गुप्त कालीन प्राचीन स्थलों के निर्माण में प्रारंभिक दीवारों की ईटों, तथा कच्चे माल का पुनः प्रयोग किया गया है। नगरीय केन्द्रों के स्थलीय प्रसार तथा नागरिक सुविधाओं के दृष्टिकोण से ये नगर अपने परवर्ती कुषाण युग की तुलना में नगण्य हैं। अपने ह्रास के प्रथम चरण में संख्या के आधार पर कुछ ही नगर जैसे कि पाटलिपुत, वैशाली, वाराणसी तथा भीटा बच पाए ।

ये नगर गुप्त साम्राज्य के मुख्य क्षेत्रों में स्थित थे। और इनके बच पाने का मुख्यतः यही कारण रहा होगा। नगरीय ह्रास का दूसरा चरण छठी सदी ई० के बाद शुरु हुआ और इसके पश्चात् ये केन्ड नगर रह ही नहीं सके ।

दस्तकारी तथा उपभोग निर्माण के सामान्य पतन को स्थिति में, पत्थर के मोतियों की मालाएं बनाने, खोल वाली व हाथी दांत की वस्तुवों तथा शीशे के समानों का निर्माण प्रायः समाप्त हो गया । उत्तर–पांचवीं सदीं ई० के निवासीय अवशेष स्थलों से ये वस्तुएँ बहुत है

कम संख्या में प्राप्त हुई हैं। उत्तर–गुप्त काल के मृदभांडों से किसी भी प्रकार की कलात्मक बनावट प्रतीत नहीं होती और वे मुख्यतः साधारण प्रकार की हैं।

समकालीन साहित्य एवं अभिलेखों से भी भली–भाँति नगरों एवं शहरों का पतन प्रकट होता है। छठी सदी ई० तक के अभिलेखों एवं मोहरों में नगरीय जीवन में कारीगरों, दस्तकारों तथा व्यापारियों के महत्व का उल्लेख किया गया है।

बंगाल से प्राप्त अभिलेखों में कहा गया है कि उन्होंने नगरों के प्रशासन में विशेष योगदान किया। परन्तु छठी सदी के बाद इस प्रकार के स्रोतों से हमें ऐसी कोई सूचना प्राप्त नहीं होती है। उत्तर–गुप्त काल में कुछ निश्चित शब्दों के भावार्थ में आए परिर्वतन उस समय की परिस्थितियों में हुए परिवर्तन की ओर स्पष्ट इशारा करते हैं। जैसे कि "श्रेणी" शब्द का कारीगरों तथा व्यापारियों के संगठन के लिए प्रयोग होता था परन्तु अब इसका उपयोग जाति के लिए होने लगा तथा निगम का आर्थ गाँव से हो गया। छठी सदीं ई. के पूर्वार्द्ध की वाराहमिहिर की रचना वृहत संहिता में दस्तकारी, नगरों, एवं व्यापार के ह्रास का उल्लेख हुआ है। उत्तरी भारत में बौद्ध नगरों के पतन का उल्लेख चीनी यात्री हुऐनसांग ने अपने यात्रा विवरणों में किया है तथा वह हर्षवर्धन के शासनकाल में भारत आया था। वात्सायन के कामसूत्र में जिस नगरीय जीवन का सजीव एवं रोमांचक चित्रण हुआ है, उत्तर–गुप्त काल के साहित्य जैसे कि दामोदरगुप्त की रचना कुट्टानिमतम (सातवी सदी ई०) में इतना सजीव वर्णन नहीं है तथा वह मुध्यतः ग्रामीण जीवन का ही उल्लेख करती है।

परन्तु सभी बस्तियाँ ग्रामीण नहीं थी। उत्तर–गुप्त काल में गैर–कृषि बस्तियों की अभिव्यक्ति प्रशासनिक स्थलों, सैन्य दुर्गो तपा धार्मिक या तीर्थस्थल केन्द्रों के रुप में हुई। छठी सदी से आठवी सदी ई. तक के अभिलेखों में सेना के कैम्पों का स्कन्धवरा के नाम से उल्लेख किया गया है। इसके प्रमाण उपलब्ध है कि कुछ नगर इसलिए बचे रह सके क्योंकि उनका परिवर्तन तीर्थस्थलों केन्डों के रूप में हो गया।

सामंतवादी प्रवृत्तियों के विकास के संबंध में व्यापार को एक बहुत मार्मिक कारण मानकर जोर देने के संबंध में संदेह व्यक्त किए गए हैं। प्रो द्विजेंडनारायण झा जैसे उदीयमान

युवा इतिहासकारों ने मध्यकालीन सामंतवाद के विकास के संदर्भ में विदेशी व्यापार–संबंधी कारण पर आवश्यकता से अधिक जोर देने के प्रति आगाह किया है।

प्राचीन काल के नगरों के विकास में मुख्य रुप से तीन आधार हमें देखने को मिलते हैं– आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक। छठीं शताब्दी ई० पू० से लेकर कुषाण एवं सातवाहन काल तक के नगरों के अध्ययन से हम पाते हैं कि इस काल में कुछ अपवादों को छोड़कर मुख्य रूप से आर्थिक एवं राजनीतिक कारणों का ही हाथ नगरों के विकास में रहा। धार्मिक प्रधानता वाले शहरों की संख्या इस काल में नगण्य है। खुदाई से प्राप्त सिक्के, लिपि सामग्री एवं अन्य पुरातात्विक सामग्री के अध्ययन से पता चलता है कि छठी शताब्दी ई० में भारत की आर्थिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन का आधार था लोहे का व्यापक उपयोग (भारत में लोहे का उपयोग 800 ईसा पूर्व से पाया जाता है) धान, ईख और कपास की बड़े पैमाने पर खेती तथा शिल्प विज्ञान में काफी उन्नति होने लगी। परिणामस्वरुप आवश्यकता से अधिक उत्पादन ईसा काल को मुख्य विशेषता थी। इस काल में लगभग 60 सुविख्यात नगरों की चर्चा तट में भृगुकच्छ तक और दक्षिणी में कावेरी–पट्टनम से लेकर उत्तर में कपिलवस्तु तक फैले हुए थे। श्रावस्ती जैसे बड़े नगरों की संख्या 20 थी।

इतिहास के विभिन्न स्रोतों एवं घटनाओं के अध्ययन से पता चलता है कि नगरों का उत्पान विस्तृत रुप से अनेक कारणों के परिणामस्वरुप हुआ। इनमें से सबसे प्रमुख कारण था अतिरेक अर्थात् आवश्कता से अधिक उत्पादन और उसके वितरण के लिए व्यापार एवं व्याणरियों का क्रिया – कलाप। धार्मिक कारण के समान ही प्रशासक वर्ग का भी हाथ शहरों के उत्थान में रहा। व्यापारिक, प्रशासनिक शैक्षणिक, धार्मिक आदि जो भी नगरों की चर्चा हमें देखने को मिलता है वे मात्र एक ही प्रकार के क्रिया–कलाप के केन्ड न थे बल्कि अन्य प्रकार की विशेषताएँ भी यहाँ पाई जाती थी।

जहाँ तक अधिक मात्रा में खाद्य पदार्थ के उत्पादन का प्रश्न है, हम पाते हैं कि अधिक उत्पादन एवं नगरीय क्षेत्रों में उसका पहुँच पाना शहरों के उत्पादन का मुख्य आधार था।

जनसंख्या की वृद्धि एवं अकाल, महामारी, सूखा आदि के कारण ग्रामीण बेकारी का भी हाथ शहर के विकास में रहा। नौकरी की तलाश में आए हुए लोगों के कारण शहरों की आबादी बढ़ती गई। फलतः शहरों के उत्पादन में वृद्धि हुई और शहरों के क्षेत्रफल में विस्तार भी होने लगा। आबादी बढ़ने के साथ–साथ तकनीकी विज्ञान में प्रगति की आवश्यकता महसूस की गई और तब नई–नई वस्तुएं अधिक मात्रा में निर्मित होने लगी।

नगरीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार व्यापार एवं हस्तकला के माध्यम से निर्मित वस्तुएँ थीं। विकसित व्यापार के कारण ही हस्तकला के आधार पर निर्मित अधिक से अधिक वस्तुओं की आवश्यकता होती थी। शहरों के विकास में व्यापार एवं बाजार का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान रहा। नगरीय आर्थिक स्थिति का मुख्य आधार व्यापार ही था। निर्मित वस्तुओं के वितरण के एक निश्चित नियम का विकास होने लगा। वैसे, शहरों का गांवों के साथ व्यापार का रोल काफी सीमित था। धार्मिक कारणों से भी शहरों का विकास हुआ। बहुत से गांवों में भी अनेक प्रकार के धार्मिक केन्ड थे लेकिन वे बड़े पैमाने पर विकसित नहीं थे। जिस गाँव में बड़े पैमाने पर धार्मिक क्रिया–कलाप के लिए शहरी व्यक्तियों का समर्थन आवश्यक था। धर्मस्थलों के मन्दिरों में ब्राह्मण, क्लर्क, शिल्पकार, गाने वाला, बजाने वाला, नाचने वाली नौकर, दासी आदि रहते थे। ये लोग मन्दिरों से सम्बन्धित सभी तरह के धार्मिक एवं आर्थिक कामों में संलग्न थे।

धार्मिक यात्री जो दूर–दूर से मन्दिर में पूजा–पाठ या दर्शन के लिए आते थे, बडी मात्रा में मन्दिरों को दान देते थे। इससे न केवल मन्दिरों को आर्थिक लाभ होता था बल्कि यातायात के सामनों का भी विकास हुआ और ये धार्मिक यात्री जो शहर के आस–पास या दूर के गांवों से आते थे। अनेक नए रास्तों का निर्माण किया करते थे। कुशीनगर, कपिलवस्तु, सारनाथ, श्रावस्ती, वैशाली आदि शहर उसी के परिणाम थे ।

धार्मिक यात्रा के परिणामस्वरुप ही शहर और गाँवों के बीच धर्मशाला या सरायों या ठहले के स्थानों का निर्माण हुआ जो गाँव या शहर में रहने वाले लोगों के द्वारा चन्दा इकट्ठा करके बनवाए गए या जिन्हें प्रशासन ने बनवाया ।

शिक्षा के कारण भी नगरों का निर्माण हुआ। बड़े–बड़े शैक्षणिक केन्ड असंख्य विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के रहने के कारण छोटे–छोटे शहरों के रूप में परिणत हो गए। इस श्रेणी में हम तक्षशिला एवं काशी को रख सकते हैं जहां राजपरिवार के भी लड़के पढ़ने आते थे। सारनाथ भी बौद्ध शिक्षा का एक केन्द्र था। नालन्दा और विक्रमशिला को इस श्रेणी में रखा जा सकता है।

बड़े–बड़े भूमिपतियों ने शहर के विकास में मदद की। काफी धनी होने के कारण इन लोगों ने आरामदाय जिन्दगी बिताने के लिए शहरों में रहना शुरू किया। शहर में ही रह कर ये लोग गांव की आर्थिक व्यवस्था का संचालन करते थे।

प्रशासनिक आवश्यकताओं के कारण शहरों का विकास हुआ। सामान्य तौर पर हम पाते है कि प्रशासनिक आवश्यकताओं के साथ–साथ ही शहरों के विकास में सबसे प्रमुख तत्व आर्थिक होता, लेकिन हम यह भी पाते हैं कि जब से प्रशासनिक व्यवस्था की आवश्यकता महसूस की जाने लगती है। शहरों का विकास होने लगता है। छठीं शताब्दी ई०पू० में तो हम कई वैसे ही शहरों को पाते है जो मुख्य रूप से प्रशासनिक केन्द्र होते थे।

सुरक्षा की व्यवस्था ने नगरों के विकास में हाथ बँटाया। क्षेत्रीय सुरक्षा के लिए जब एक निश्चित स्थान पर काफी संख्या में सैनिक, लड़ाई के औजार एवं अन्य सुरक्षात्मक उपकरण रखे गये तथा उनकी देखभाल के लिए अधिकारियों की नियुक्ति की गई तो बाद में चलकर ऐसे स्थान शहर के रूप में परिणत हो गए।

युद्ध के कारण नए–नए शहर बने। युद्ध से सुरक्षा के लिए बड़े–बड़े स्थानों पर चाहारदीवारी और मजबूत किले बनाए गये तथा वहाँ पर बहुत से सैनिकों, अधिकारियों एवं राजाओं के आवास निर्मित हुए। बाद में ऐसे स्थान भी जिन्हें स्कन्धावार भी कहा जाता है। शहर के रूप बदल गए। जिन क्षेत्रों में सिंचाई व्यवस्था अच्छे तरीके से की गई, वहां आवश्कता से अधिक खाद्य सामग्री एवं कच्चे सामान पैदा किए गए। आवश्यकता से अधिक सामानों की बिक्री के लिए बहुत से गांवों में से किसी एक गांव को बहुत तरह की सुविधाओं

को ध्यान में रखकर खरीद–बिक्री के केन्द्र के रूप में जब उसे स्थापित किया गया तो बाद में चलकर वह स्थान शहर के रूप में परिणत हो गया।

भौगोलिक दृष्टिकोण से जिन क्षेत्रों की भूमि काफी उपजाऊ रही एवं वर्षा सन्तोषप्रद रही और बाढ़ तथा सूखा से क्षति की सम्भावना नहीं रही वैसे क्षेत्रों में व्यापारिक एवं राजनीतिक नगरों का विकास तेजी से हुआ। व्यक्तिगत प्रयासों से भी नगरों का विकास हुआ। सिकन्दर ने अपने नाम पर शहर बसाया। कनिष्कपुर एवं हुकपुर नामक शहरों के निर्माता कुषाण राजा कनिष्क एवं दुविष्क थे। अपने शहर का सुविख्यात इतिहासकार प्रो० रामशरण शर्मा की यह कृति पुरातालिक साक्ष्यों के आधार पर प्राचीन काल के अंतिम और मध्यकाल के प्रारंभिक चरण में भारतीय नगरों के पतन और उजड़ते जाने का विवेचन करती है। इसके लिए लेखक ने तत्कालीन शिल्प, वाणिज्य और सिक्कों के अध्ययनार्थ भौतिक अवशेषों का उपयोग किया है और 130 से भी ज्यादा उत्खनित स्थलों के विकास और विनाश के चिन्हों की पहचान की है।

4.3 सारांश

प्रायः आधुनिक काल में भी मनुष्य अनेक प्रकार के परिवेश में रहता है। जनजातीय अध्ययन से यह पता चलता है कि प्रत्येक काल खण्ड में मनुष्य जंगली जीवन (प्राकृतिक अवस्था) ग्रामीण जीवन और शहरी जीवन में समान्तर रूप से विद्यमान रहता है। उत्पादन अधिशेष के ऊपर समाज और सामुहिकता का निर्माण आश्रित है। मध्यकीन भारत में बड़े साम्राज्यों के विघटन, सामंतवाद का उदय, समाज के स्तरीकरण और धार्मिक कारणों ने संयुक्त प्रभाव डालकर भारत में महाजनपद कालीन बड़े नगरों की जगह छोटे–छोटे नगरों को जन्म दिया। शिक्षा केन्द्र, धार्मिक आस्था के केन्द्र और सामरिक केन्द्रों के निर्माण तथा निरंतर युद्धों के कारण पूर्व मध्यकाल में प्रशासनिक केन्द्रों के आस–पास नगरों का विकास हुआ। विभिनन आवश्यकता की वस्तुओं के कारण व्यापार का गतिमान स्वरूप ग्रामों से अधिशेष उत्पादन इन केन्द्रों की ओर चल पड़ा जो अनेक छोटे बड़े नगरों को बनने में सहायता प्रदान करता है। इन्हीं केन्द्रों खासकर आक्रमण तक समृद्ध रहे, परन्तु प्रशासनिक केन्द्रों का उत्थान

पतन इस काल में प्रायः देखने को मिलता है। अनुकूल भूमि और संतोषजनक वर्षा ग्रामीण जीवन को निरंतरता प्रदान करते रहे लेकिन नगरीय केन्द्रों का उत्थान पतन राजनीतिक कारणों से सदैव प्रभावित रहे।

4.4 बोध प्रश्न

1. पूर्व मध्यकालीन ग्राम एवं नगर में सामंतीकरण व्यवस्था का वर्णन कीजिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

2. पूर्व मध्यकालीन ग्राम एवं नगरों के स्वरूप, उत्पत्ति एवं नामकरण का उल्लेख कीजिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

3. मानवीय बस्तियों से ग्राम और फिर ग्राम से नगर के विकास के लिए उत्तरदायी कारणों का उल्लेख कीजिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

4.5 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तकें

- दहिया , पूनम दलाल : ''प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत"
- श्रीवास्तव के०पी० : ''प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत का इतिहास''
- चक्रवर्ती, रणवीर : '' पूर्व मध्य कालीन भारत''

- कुमार प्रवीण : '' मध्य कालीन भारत का इतिहास ''
- राय, यून.एन. : ''प्राचीन भारत में नगर जीवन ''
- सिंह, डॉ. नम्रता : ''मध्यकालीन भारत में नगरीकरण'', यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2009

इकाई–5 पूर्वमध्यकालीन बंदरगाह एवं यातायात के साधन

इकाई की रूपरेखा

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रमुख बन्दरगाह

5.3 यातायात के साधन

5.4 यातायात के लिए बैलगाड़ियों का प्रयोग

5.5 यातायात के लिए जहाजों का प्रयोग

5.6 सारांश

5.7 बोध प्रश्न

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.0 प्रस्तावना

पांचवी शताब्दी ईसवीं के बाद से ग्यारहवीं–बारहवीं शती ई0 तक चालुक्य, राष्ट्रकूट, पल्लव, चोल तथा पाण्ड्यों तथा अन्य राजवंशों ने भारत के विदेशों से विशेषकर चीन दक्षिण पूर्व एशिया तथा फारस के साथ घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये। पल्लव शासकों ने विदेशी व्यापार को प्रोत्साहित किया तथा महाबलिपुरम की एक व्यापारिक समुद्रपत्तन के रुप में प्रतिष्ठा बढ़ी इस बंदरगाह से ताम्रलिप्ति, श्रीलंका तथा पूर्वी द्वीपसमूहों के लिये जहाजों का आवागमन होता था।

5.1. उद्देश्य

किसी भी युग की संस्कृति, समाज और राजनीति अगर किसी भी चीज से सर्वाधिक प्रभावित होती है तो वह उस समाज की अर्थव्यवस्था/जैसा कि हम जानते है व्यापार (आन्तरिक और वाह्य) तथा वाणिज्य, का केन्द्र प्राचीन मध्ययुग और आधुनिक काल में भारत और हिन्द महासागर रहा है। उत्तर भारत चीन और पश्चिमी देशों के बीच व्यापार का स्थल मार्ग साझा करता था, जबकि पूर्वी देशों और पश्चिम का जल मार्गीय व्यापार भारत के तटों के सहारे ही संचालित होता था। इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य निम्न लिखित होगा।

1. पूर्व मध्यकाल में भारत पूर्वी और पश्चिमी बंदरगाह जो महत्वपूर्ण थे उनकी जानकारी।
2. पूर्व मध्यकाल में यातायात के साधनों को आप जान सकेगें।
3. मानव की उत्पत्ति और उसके विकास में पशु शक्ति के महत्व से आप अवगत हो सकेंगे।
4. यदि सुक्ष्मता से अवलोकन करेगें तो आप पायेगे कि भारत की सामाजिक मान्यताएँ किस प्रकार से आर्थिक यातायात साधन गौवंश (बैलगाड़ी) के माध्यम से आगे बढ़ती है। जिससे गौवंश आर्थिक महत्व के साथ धार्मिक जीवन का अंग बन जाता ळें

5.2 प्रमुख बन्दरगाह

पल्लवों की कुछ मुद्राओं पर मस्तुलदार जहाज का अंकन किया गया है। इससे तत्कालीन जहाजरानी की प्रगति का आभास मिलता है। चोलों के समय इस दिशा में अधिक प्रगति की गयी तथा भारत का फारस की खाड़ी चीन तथा दक्षिण पूर्व एशिया के देशों से बड़े पैमाने पर व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुआ।

समुद्री मार्ग से चीन के साथ भारत के सम्बन्ध काफी घनिष्ठ थे। 9वीं शती ई0 में भारत के अलावा चीन के तंग, सुदूरपूर्व के श्री विजय तथा बगदाद के खलीफा साम्राज्यों ने इस व्यापार में काफी हिस्सा बंटाया। समुद्री व्यापार को प्रोत्साहन देने का श्रेय सबसे अधिक दक्षिण भारत के शासकों को है।

फारस की खाड़ी के पूर्वी तट पर स्थिति सिरक के इस समय एक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र था। सिरक के व्यापारियें की चर्चा करते हुए मुस्लिम लेखक ने लिखा है कि इनके जहाज लाल सागर से मिस्र न जाकर जट्टा से लौटकर भारत चले जाते है क्योंकि भारत तथा चीन के समुद्र में मोती तथा अम्बर पाये जाते हैं।

8वीं शती में व्यापारियों के द्वारा समुद्री बंदरगाहों का प्रयोग किया गया था। ये बंदरगाह अपनी सुविधाओं से परिपूर्ण थे। भारतीय शासकों के द्वारा इनके रख–रखाव पर विशेष ध्यान दिया जाता था। भारतीय शासकों ने विशेषकर विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिये बंदरगाहों पर विशेष ध्यान दिया। शासकों ने बंदरगाहों के रख–रखाव के लिये एक अलग विभाग की स्थापना भी की थी।

भारतीय व्यापारियों के द्वारा अपने माल को जहाजों में भरकर विदेशों में जाने के लिए इन बंदरगाहों का प्रयोग करना होता था। कुछ लेखकों के द्वारा उल्लेख किया गया है कि शासक वर्ग विदेशी व्यापार को प्रोत्सहन करने के लिए अगर व्यापारियों का जहाज डाकुओं के द्वारा लूट लिया जाये या जहाज पानी में डूब जाये तो उसका हरजाना देते थे तथा उससे कर

नहीं लिया जाता था। भारत के विदेशी व्यापार समुद्रमार्ग एवं तट पर स्थित बंदरगाहो ने बहुत योगदान दिया। पश्यिम तट के बंदरगाह इस प्रकार थे–सेपारा, वारवैरिकम, मुजरिस, तोण्डी, भटकल, नौरा, कोरोमणलम्, नेग्ल्सिडा पूर्वी तट के बंदरगाह– कावेरीपत्तम– (पोडुक, अरिकमेडु), ताम्रलिपि, कोडैके चेर शासकों के प्रसिद्ध बंदरगाह– मुशिर, मुजरिस, करौर, वान्जि, तोण्डी

भड़ौच के बंदरगाह से विदेशों विशेषकर इटली, लाओडीस तथा अरब देश से शराब, तांबा, रांगा, शीशा, मूंगा, पोखराज, संखिया, फिल्टग्लास, सुरमा, चांदी, सोने की मुद्रा तथा महीन कपड़े मंगाये जाते थे। तथाा जटामासी, गुग्गुल, हाथी दांत, अफीम, लाइसियम सभी तरह के कपड़े, रेशमी कपड़े, बड़ी पीपल आदि बाहर भेजे जाते थे। मुजरिस बंदरगाह में अरबों तथा यूनानियों के माल भरे जहाज पड़े रहते थे। नेलीसिड़ा बंदरगाह मुजरिस से 80किमी. दूर पाण्ड्य राज्य में था। यहॉ अरब के व्यापारी रोम का माल भारतीय माल के बदलते थे। यह नकद मूल्य में भी माल खरीदते थे। लिप्नी ने लिखा है कि पहले पहल यहां आने वाली व्यापारी चेरों से बिना बात–चीत के ही व्यापार करते थे। नेलसिड़ा तथा मुजरिस में परस्पर ईर्ष्या रहती थी। नेलसिड़ा आने वाले व्यापारियो को पाण्ड्य यह कर भड़काते थे कि मुजरिस में माल कम मिलता है।

सुदूर दक्षिण में पश्चिम तट पर स्थित **किलो** अत्यन्त महत्वपूर्ण बंदरगाह था। इसका प्राचीन नाम **कोलम** था। दक्षिण भारत के इस क्षेत्र और समुद्रपार के पश्चिमी देशों के बीच होने वाले व्यापार का यह प्रसिद्ध केन्द्र था। पश्चिमी देशों से आने वाले जहाज केड़ा जाने से पूर्व यहां विश्राम करते थे तथा पीने के लिए ताजा पानी लेते थे। अरब जाने वाले चीनी जहाज भी यहाँ रुकते थे। पूर्वी तट के बंदरगाहों में **ताम्रलिप्ति** सबसे बड़ा बंदरगाह था। यह कावेरी की उत्तरी शाखा के मुहाने पर था। यहां से चीन तथा सुदूरपूर्व देशों के लिए जहाज आते–जाते थे

5.3 यातायात के साधन

पूर्वमध्यकाल में राजवंशों के उदय एवं उनके राजनीतिक प्रभुत्व के प्रसार के साथ–साथ व्यापार वाणिज्य मे भी आशातीत उन्नति हुई जिसके फलस्वरुप इसका इस प्रदेश के आर्थिक स्वरुप पर विशेष असर पड़ा। इससे सम्बन्धित सूचनाएं अल्बरुनी, अलइंद्रिसी, मार्कोपोलो, इब्नबतूता जैसे विदेशी लेखकों की कलमों, समसामयिक ग्रन्थों तथा अभिलेखों से मिलती है। प्रारम्भ के यहाँ के गॉव आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर थे तथा अपनी आवश्यकता की वस्तुयें स्वयं गॉवों में उत्पादित करते थे। इससे बड़े पैमाने पर न तो किसी वस्तु उत्पादन होता था न उसका व्यापार लेकिन जैसे–जैसे नगर अस्तित्व में आते गये और उत्पादन में वृद्धि होती गयी व्यापार वाणिज्य के क्षेत्र में भी प्रगति हुई। आर्थिक उन्नति तथा नगरीकरण ने आंतरिक तथा विदेशी दोनों व्यापार को प्रात्साहित किया। विदेशी व्यापार तो आगे चलकर चोल युग में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया। एक गॉव में आवश्यकता से अधिक उत्पादित वस्तुयें दूसरे गॉवों में नियमित रुप से भेजी जाती थी। सामान्यतः यातायात के रुप में नदियों अथवा नहरों का प्रयेग नहीं किया जाता था। किन्तु तटवर्ती प्रदेशों में जलयानों का प्रयोग करते थे। यातायात मुख्यतः स्थल मार्ग से होता था पर कुछ को छोड़कर सड़कों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। ज्यादातर पगडंडियां ही थी। इनकी चौड़ाई इतनी कम थी कि इन पर सवारियों का चलना भी मुश्किल हो जाता था। पेरीप्लस ऑव द इरीथ्रियन सी में दक्कन की सड़कों की चर्चा करते हुए लिखा गया है कि यह पैठन, तगर तथा अन्य स्थानों से बैगनों में पगडंडियों की सहायता से माल भड़ौच लाये जाते थे। संभवतः इसी कारण राष्ट्रकूटों ने सड़कों की ओर विशेष ध्यान दिया। दकन की अपेक्षा सुदूर चोल प्रदेश यातायात की सुविधाएँ अधिक थी।

चोल लेखों में वडि तथा पेरुवलि नामक सड़कों का उल्लेख किया गया है। वडि पगडंडियों कुछ अच्छी होती थी। लेकिन बरसात में ये भी खराब हो जाती थी। उत्तरमेरुर की एक वडि एक बार बरसार के कारण खराब हो गयी जिससे आवागमन अवरुद्ध हो गया। सभा ने प्रस्ताव किया कि इसे दुबारा बनाते समय और अधिक चौड़ा किया जाय।

पेरुवलि बड़ी सड़के थी। ये एक देश से दूसरे देश को जाती थी। लेखों में आन्ध्रपथ (बडुप्पेरुवलि), जो आंध्रप्रदेश जाता था, पेन्नाडम्, महापथ, जतवूरप्परुवलि आदि महापथों का

उल्लेख मिलता है। इनमें सबसे बड़ा एवं महत्वपूर्ण महापथ कल्याणपुरम को जाता था। इनमें एक सड़क की चौड़ाई लगभग 07 मीटर थी।

अच्छी सड़कों की कमी के कारण आमतौर पर बैलगाड़ियों, कबाड़ों के शिरों तथा पशुओं की सहायता से माल एक स्थान से दूसरे स्थान पहुँचाए जाते थे। मनुस्मृति के एक श्लोक पर टीका करते हुए मेधातिथि ने लिखा है कि माल ढोने के लिए पशुचालित गाड़ियों तथा पशुओं की पीठ का उपयोग किया जाता था।

दकन में निम्न श्रेणी के घोड़ों को भी इस कार्य (माल को ढोने) में लगाया जाता था। पहाड़ी भागों में अथवा शीघ्रता से सम्पन्न किये जाने वाले कार्यो में इनकी विशेष उपयोगिता थी। तटवर्ती इलाकों में नौचालन की नियमित व्यवस्था रहती थी तथा इनके माध्यम से माल एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाया जाता था। व्यापारी अथवा वणिक सामान्यतः शक्तिशाली निगमों अथवा श्रेणियों में संघटित थे। ये संगठन भी यातायात के साधनों को देखते थे।

5.4 यातायात के लिए बैलगाड़ियों का प्रयोगः–

पूर्वमध्य काल में यातायात के लिए बैलगाड़ियों का प्रयोग बड़ी संख्या में किया जाता था। सामान्यतः एक बैलगाड़ी में दो बैलों को बांधा जाता था जो कि माल को एक निश्चित स्थान तक पहुँचाते थे। बैलगाड़ियों में पहियों का प्रयोग होता था जो कि लकड़ी के बने होते थे। बैलगाड़ी यातायात के एक सुनिश्चित साधन के रुप में था। सामान्यतः बैलगाड़ी सभी के घरों में होती थी।

5.5 यातायात के लिए जहाजो का प्रयोगः–

विदेशों के साथ व्यापार में जहाज का प्रयोग किया जाता था। नल्सिडा, नौरा, वारवैरियम्, सोपारा, कोरोमण्डल आदि बन्दरगाहों से जहाज विदेशों के लिए रावान होते थे।

जहाज पर काली मिर्च, मोती, लौंग, चंदन, कपड़े, नारियल, सीसे, दाल, चीनी, लाल मोती आदि विदेशों में भेजे जाते थे।

यातायात के साधनों में घोड़े आदि का प्रयोग भी किया जाता था। पूर्वमध्यकालीन शासकों ने यात्रियों के विश्राम के लिए सराहों का भी निर्माण कराया था। जिससे यात्री अपने माल को ले जाते समय इन सराहों में कुछ देर के लिए रुकते थे तथा विश्राम करते थे।

5.6 सारांश

पूर्वमध्यकालीन बंदरगाह एवं यातायात के साधन तत्कालीन समाज की अर्थव्यवस्था की सटिक जानकारी को प्रदान करने के स्रोत के साथ–साथ पूर्व मध्य काल में सामाजिक संचरण की भी जानकारी प्रदान करते है। इस इकाई के अध्ययन के द्वारा तटवर्ती समाज व्यवस्था और उसके प्रशासन की पर्याप्त समझ प्राप्त होती है। पूर्व मध्यकाल में बंदरगाहों व व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा व संरक्षा का कार्य प्रमुखता से करते थे। साथ –साथ आपदा की स्थिति में करछूट व क्षतिपूर्ति प्रदान करते थे। इससे यह पता चलता हैं कि पूर्व मध्यकाल में भी बीमा जैसी सुविधाए राज्य द्वारा व्यापारियों को प्रदान की जाती थी। निष्कर्षतः कह सकते है कि उस काल में भारत चीन, मध्यपूर्व तथा पश्चिमी व्यापार का एक महत्वपूर्ण मध्यवर्ती केन्द्र था और तत्कालीन व्यापार की सभी प्रणालीयों स्थल एवं जल मार्ग व्यापार की राज्य द्वारा उत्तम व्यवस्था की जती थी।

5.7 बोध प्रश्न

1. पूर्व मध्यकाल में चीन दक्षिण पूर्व एशिया एवं फारस के व्यापारिक सम्बन्ध की व्याख्या कीजिए।
2. पल्लव शासकों के किस नीति से विदेशी व्यापार को प्रोत्साहित किया वर्णन कीजिए।
3. यातायात के विभिन्न साधनों का वर्णन कीजिए।

5.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- शर्मा, रामशरण : प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास , हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, 2008
- शर्मा, रामशरण : अर्बन डिके इन इण्डिया, 300–1000 ई. मुंशीराम मनोहर पब्लिशर्स प्रा. लि. दिल्ली, 1987
- परूथी. डॉ. आर.के. : सल्लतनतकालीन भारत का आर्थिक इतिहास, अर्जुन पब्लिकेशन हाऊस, नई दिल्ली, 2005
- गोपाल, लल्लन जी : द इकोनॉमिक लाइफ ऑफ नार्दन इण्डिया, मोतीलाल बनारसी पब्लिशर्स, प्रा.लि. दिल्ली, 1989

काई –6– सल्तनत कालीन भू–राजस्वव्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्धेश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 भूमि का निर्धारण
6.2.1– अक्ता भूमि
6.2.2– खालसा भूमि
6.2.3– इनाम भूमि
6.2.4– हिन्दु राजाओं की भूमि
6.2 बदलते राजनैतिक परिदृश्य में लगान निर्धारण
6.3 सारांश
6.4 शब्दावली
6.5 बोध प्रश्नो के उत्तर

6.0 उद्धेश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे :

- परम्परागत भारतीय भू–राजस्वव्यवस्था में क्या परिवर्तन आये।
- कृषक समाज की बदलती हुई आर्थिक परिस्थितिया क्या रही।
- लगान व्यवस्था के कारण ही कीमतें निर्धारित करना आसान हुआ।
- भूमि का विभाजन और भूमि के उत्पादन क्षमता के अनुसार कर निर्धारण हुआ।

6.1 प्रस्तावना

दिल्ली सल्तनत की स्थापना भारतीय इतिहास में एक नये अध्याय की शुरुआत करती है। विखण्डित भारतीय राजनैतिक परिदृश्य को कम से कम उत्तर भारत में दिल्ली सल्तनत ने एकता का जामा पहना ही दिया था। राजनैतिक रूप से मजबूत राज्य में ही एक मजबूत आर्थिक ढॉचा तैयार किया जा सकता है। सल्तनत काल की स्थापना के साथ साथ भू–राजस्व व्यवस्था भी महत्वपूर्ण इसलिए हो गयी क्योंकि इसी पर राज्य की आर्थिक व्यवस्था निर्भर है। भारत अनन्त काल से कृषि प्रधान देश रहा है सल्तनत काल में भी काश्तकारी का ढंग पहले से अधिक भिन्न नही था। वास्तव में सल्तनत कालीन भूमि व्यवस्था मुस्लिम विचारधारा और पूर्व प्रचलित देशी संस्थाओं का समिश्रण थी। दिल्ली सल्तनत के आर्थिक जानकार और सुल्तानों नें इस प्रकार भू–राजस्व सम्बन्धी नियम स्थापित किए थे, जिनके द्वारा अधिशेष उत्पादन मुख्यतः अक्ता प्रणाली द्वारा प्राप्त किया जाता था। इस उत्पादन से दो वर्ग लाभान्वित होते थे–अक्तादार एवं जमींदार और ये दोनो ही शासक वर्ग से सम्बन्धित थे। सामान्य रूप से तुर्को ने इस्लामी अर्थव्यवस्था सम्बन्धि सिद्धान्तों को अपनाया। यह व्यवस्था बगदाद के मुख्य काजी अबू याकूब द्वारा लिखित

किताब–उल–खराज से ली गयी थी। सल्तनत कालीन आर्थिक अवस्था के बारे में हमें बहुत सीमित सी जानकारी प्राप्त होती है क्योकि तत्कालीन इतिहास की रूचि राजनीतिक घटनाओं में अधिक थी।

6.2 भूमि का निर्धारण

सल्तनत कालीन भू–राजस्व व्यवस्था का मुख्य आधार खराज और उस्र है जो जमीन की किस्म या भूमि की उत्पादन शीतलता पर निर्भर करता है। उस्र मुसलमानो से लिया जाने वाला कर था। जिस भूमि पर प्राकृतिक साधनों से सिचाई होती थी वहॉ पैदावार का 10 प्रतिशत (1/10 भाग) और जहॉ सिचाई के संसाधन राज्य द्वारा या कृत्रिम साधनों से होती थी वहॉ 20 प्रतिशत (1/5 भाग) कर के रूप में लिया जाता था। खराज वह भूमि कर था जो गैर मुस्लमानो लिया जाता था। इसकी दर निश्चित नही थी फिर भी यह कभी भी उपज का 1/3 से कम और 1/2 से अधिक नही लिया जाता था। सल्तनत काल में भूमि की व्यवस्थापक स्थिति को ठीक रखने की दृष्टि से उसे चार भागों में विभाजित कर दिया गया – 1. प्रशासन में भाग लेने वाले उच्च पदाधिकारियों में बंटी हुई भूमि 2. खालसा भूमि राज्य की भूमि 3. दान में दी गई भूमि जिन पर कोई कर नही लिया जाता था 4. वह जमीन जो अधीनस्थ हिन्दू–राजाओं के आधिपत्य में थी।

6.2.1 आक्ता भूमि

मध्य कालीन भारत की एक प्रमुख विशेषता सामन्तवाद मुख्य रूप से आक्ता संस्था के द्वारा ही विस्तारित हुआ। रेवर्टी ने आक्ता के लिए 'फीफ' शब्द का प्रयोग किया है। जो सीधे सामंती प्रथा की ओर संकेत करता है। इसमें राजा या सुल्तान का प्रधान (पट्टाधारी) वास्तव में जमीदारी का सर्व–शक्तिमान शासक होता था किन्तु यह तथ्य पूर्णता भ्रामक है क्योकि मुक्ताओं पर बहुत अधिक नियन्त्रण लागू था। 'फीफ' शब्दावली से इतने अधिक नियन्त्रण का बोध नही होता लगातार कमजोर शासकों के काल में या किसी निर्बल वंश के अन्तर्गत आक्ता पर आक्ता धारकों के चले आ रहे अधिकार को कुछ अंश तक मान्यता प्राप्त हो गई थी और आक्ता का व्यक्तिगत सम्पत्ति के समान माना जाने लगा था। आक्ता निश्चित रूप से राज्य के किसी हिस्से पर दखल करने या निजी सम्पत्ति रखने के अधिकार की सल्तनत द्धारा स्वीकृति की अपेक्षा केन्द्रीय सरकार की कमजोरी को प्रकट करती हैं। तुर्की साम्राज्य की स्थापना ने अधिक से अधिक राजपूत राजाओं को हटाकर जैसे–जैसे केन्द्रीयकरण किया वैसे–वैसे भिन्न–भिन्न स्थानों पर राजपूत जमींदारों के स्थान पर आक्तादार नियुक्त किये जाने लगे। आक्ता–प्रथा भूमि से सम्बन्धित स्थिति का एक विशिष्ट परिभाषिक शब्द हैं जिसे विद्धानों ने भिन्न–भिन्न रूप से परिभाषित किया है परन्तु सामान्यता आक्ता राजस्व वसूलने का एक माध्यम था जिसके द्धारा आक्तादार अपनी सेना का व्यय उठाना और आक्ता मे कानून व्यवस्था बनाये रखने का जिम्मेदार होता था। फिर वह जमीन का मालिक नही था उसका एक स्थान से दूसरे स्थान पर तबादला भी हो सकता था।

आक्ता जमीन से सुल्तान अलाउद्दीन ने अपने कर्मचारियों का राजस्व इकट्ठा करने का काम सौपा। सुल्तान का उददेश्य था कि जो भी अधिशेष है वह राजा के कोश में जमा हो। रिश्वतखोरी और जमाखोरी को उसने पूरी शक्ति के साथ रोका। मोहम्मद तुगलक के समय में आक्ता मे सुल्तान का हस्तक्षेप चरम सीमा तक पहुँच गया था। सुल्तान मोहम्मद तुगलक ने कई बार आक्ता के बसूल करने का अधिकार मुक्ताओं से लेकर या तो मालगुजारी देने वाले किसानो को दे दिया या राजस्व विभाग के किसी अधिकारी को दे दिया। समकालीन स्रोतो से इस वात का ज्ञान होता है कि ठेके पर जमीन देने की मुक्ता प्रथा मौजूद थी। बरनी ने अपनी पुस्तक तारीख–ए–फिरोजशाही में इसका सकेंत दिया है। मोहम्मद तुगलक ने बीदर की आक्ता शिहाब नामक व्यक्ति को एक करोड़ टके में ठेके पर दी जो कि वह बसूल करने में असफल रहा। यह भी ज्ञात होता है कि जो जमीन अधिक उपजाऊ होती थी उसको प्राप्त करने के लिए अधिक प्रतिस्पर्धा थी। फिरोजशाह के समय तक आते–आते आक्ता

प्रथा आनुवांशिक हो गई थी और किसी एक सरदार की भूमि उसके पुत्र को दी जाने लगी थी। इस दशा में जमीन का स्थानांतरण समाप्त हो गया। इससे ज्ञात होता है कि केन्द्र का नियंत्रण दुर्बल हो चला था और अक्तादारो में अपने अपने क्षेत्र में जमीन के वास्तविक अधिकारी बनने की भावना बढ़ने लगी थी।

6.2.2 खालसा भूमि

खालसा भूमि का शासन प्रबंध केन्द्रीय सरकार के अधीन था किन्तु सरकार प्रत्येक किशान से नही बल्कि चौधरी, मुकद्दम आदि स्थानीय राजस्व अधिकारियों के माध्यम से भूमिकर वसूल करती थी। उक्त पदाधिकारियो द्वारा लगान वसूल करने के अतिरिक्त प्रत्येक उपक्षेत्र में 'आमिल' नाम का एक पदाधिकारी होता था, जो राजस्व इकट्ठा करके राजकोश में जमा करता था। अनुमान लगाया गया है कि सल्तनत काल में खालसा भूमि काफी विस्तृत थी और यह भूमि अधिकतर दिल्ली के आसपास विशेषकर दोआब में थी। इसकी कोई स्पष्ट जानकरी नही है कि खालसा जमीन का कुल हिस्सा कितना था, परन्तु इस बात में कोई सन्देह नही नही कि जैसे–जैसे राज्य का विस्तार हुआ होगा खालसा जमीन का क्षेत्र भी स्वयमेव बढ़ता गया होगा। खालसा (राज्य प्रशासन के अन्तर्गत भूमि के लिए प्रयुक्त शब्द) या महरूसा (रक्षक–सेनायुक्त शहर या प्रान्त) कहा जाता था खलसा क्षेत्र की आय सुल्तान के लिए सुरक्षित रहती थी। इस क्षेत्र में राजस्व की वसूली सुल्तान के अर्थ विभाग के कर्मचारी करते थे और सीधे शाही खजाने में भेजते थे खालसा के शासक शहना को संभवतः निश्चित वेतन दिया जाता था।

6.2.3 अनुदान भूमि

सल्तनत काल में सुल्तान के अधिकार से मुक्त भूमि को मोर लैण्ड ने अनुदान (grants) कहा है। यह अनुदान मिल्क (राजा द्वारा प्रदत्त), वक्फ (धर्म की सेवा के आधार पर प्रदत्त भूमि) तथा इनाम (पेंशन) थे। इस प्रकार की भूमि पर किसी प्रकार का कर नही लगता था। समय बीतने पर यह करमुक्त भूमि माफीदारो की वंशानुगत सम्पत्ति हो जाती थी। अलाउद्दीन खिलजी ने इस परम्परा को खत्म करने की कोशिश कर इस प्रकार की भूमि को राज्य में मिलाया। आर0 पी0 त्रिपाठी के अनुसार ऐसा करने में उनका उद्देश्य ऐसी सभी भूमियो पर, जिसके बारे में वह अधिकार को ठीक नही समझता था, सुल्तान का अधिकार स्थापित करना, निर्णय करना, उन्हे समाप्त करना, अथवा उन्हे अपनी शर्तो पर अन्य व्यक्तियों को देना था। इस आज्ञा के फलस्वरूप खालसा भूमि में वृद्धि हुई। जिन अनुयायियों की भूमि छीन ली गई थी, गयासुद्दीन तुगलक के समय में उनके अधिकार दुबारा उन्हे सौंप दिये गये। इस शाही उदारता के फलस्वरूप सभी वर्गो के लोगो को लाभ हुआ। मोहम्मद तुगलक, फिरोजशाह तुगलक के समय में इस तरह के अनुदान जारी रहे। शेख तथा उलेमाओं को अपने जीविकोपार्जन के लिए गॉव दिये जाते थे जैसा कि इरफान हबीब ने उचित ही बताया है, अनुदानो का आर्थिक महत्व सीमित था। क्योंकि इसका प्रसार क्षेत्र व्यापक नही था। शायद उसका सैद्धान्तिक महत्व अधिक था। पूरे के पूरे मुस्लिम मुल्ला वर्ग (Theological Class) तथा ऐसे वर्ग का जीवन निर्वाह इन्ही अनुदानो द्वारा होता था। यहां तक की ऐसे शब्द वित्तीय अनुदान ग्राहियों के लिए एक अन्य पर्याय जैसा माना जाने लगा था।

6.2.4 अधीनस्थ हिन्दु राजाओं की भूमि

दिल्ली सल्तनत के आरम्भ से ही अन्य ऐसे प्रान्त भी थे जो अधीनस्थ हिन्दु राजाओं के आधिपत्य में थे और जो एक निश्चित रकम अदा किया करते थे।

सामान्यतः ये राजा जमींदार थे इनका अपनी जमीन पर परम्परागत अधिकार था। इनको राय, राना, रानका की उपाधि प्राप्त थी। तुर्की शासको ने विशेष रूप से प्रमुख राजपूत जमीदारों के उनके स्थान से हटा दिया और शेष से कुछ शर्तों पर अपनी सत्ता की अधीनता स्वीकार करवाई। राजस्व एकत्रित करने वाले (खूत, मुकद्दम चौधरी) को विशेष सुविधायें प्रदान की जाती थीं। सुल्तानों को राजस्व संग्रह करने के लिए इस वर्ग पर निर्भर रहना पड़ता था। ये जमींदार और मुखिया अपना बड़ा अधिकार जताते थे। अलाउद्दीन

खिलजी ने इनकी शक्ति को पूर्ण रूप से समाप्त करना चाहा। उसका मानना था कि जब तक इस वर्ग के पास अधिकार और शक्ति है वे विद्रोह का कारण बन सकते है। अलाउद्दीन खिलजी के काल में कर प्रणाली का आधारभूत सिद्धान्त था– "सबल वर्ग का बोझ निर्बल वर्ग पर नही पड़ना चाहिए। खराज के मामले में सबल और निर्बल दोनो एक समान नियंत्रित होने चाहिए"। कर प्रणाली के इस सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए उसने कई भू–राजस्व सम्बन्धी नियम लागू किए। भूमि कर की दर बढ़ाकर पचास प्रतिशत कर दी गई। उसका मानना था कि किसी को भी समृद्धि की अवस्था में ना छोड़ा जाय ताकि वह विद्रोह करने की हिम्मत करे। इसका लक्ष्य केवल हिन्दु किसान ही नही अपितु गॉव के सभी विशेषाधिकार वाले वर्ग के लोग थे, जिसमें मुसलमान भी सामिल थे। अलाउद्दीन के बन्दोबस्त की महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि वह प्रथम मुसलमान शासक था जिसने कृषकों से सीधा सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश की तथा गॉव के स्तर पर भारी भूमि सुधार किए। गयासुद्दीन तुगलक की नीति सैद्धान्तिक रूप से अलाउद्दीन खिलजी की नीति के समान थी। हालांकि विद्रोह की सम्भावना बनी रहती थी। फिरोज तुगलक के समय में हिन्दु जमींदारों और सरकार के बीच सम्बन्ध पहले की अपेक्षा शान्ति पूर्ण थे और दोनो में एक नवीन प्रकार का समझौता स्थापित हो गया था।

बोधप्रश्न

1. आक्ता भूमि की विशेषताओं के बारे में 15 पक्तियां लिखिए?

_____
_____
_____
_____
_____
_____
_____
_____
_____
_____
_____
_____
_____
_____

2. अलाउद्दीन खिलजी के समय की भू–राजस्व व्यवस्था पर प्रकाश डालिए?

_____
_____
_____

_____
_____
_____
_____
_____
_____
_____

3. खालसा और अनुदानित भूमि में 10 अन्तर बताइए।

_____
_____
_____
_____
_____
_____
_____
_____
_____
_____

2. निम्नलिखित प्रश्नों में सही के सम्मुख (✓) एंव गलत के सम्मुख (✗) लगाएं।

(i) दिल्ली सल्तनत की भू–राजस्व व्यवस्था अबू याकूब की किताब उल–
खराज में लिपिबद्ध है ( )

(ii) दिल्ली सल्तनत में अधिकतम भूमि कर 75 प्रतिशत तक बसूला गया ( )

(iii) अलाउद्दीन खिलजी अपने सैनिको को नकद वेतन देने वाला
पहला सुल्तान था ( )

(iv) खालसा भूमि अनुदान के रूप में प्रदान की जाती थी ( )

6.3 बदलते राजनैतिक परिदृश्य में लगान निर्धारण

सल्लनत–काल में भूमिकर के रूप में राज्य किसानों से उनके उत्पादन का कुल कितना हिस्सा वसूल करता था इसकी वास्तविक जानकारी उपलब्ध नही है। राज्य का हिस्सा समय–समय पर बदलता रहता था। अलाउद्दीन वह प्रथम मुस्लिम शासक था जिसने भूमि–प्रबंध में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। उसने भूमिकर की दर बढा कर पचास प्रतिशत कर दी, जिसे इस्लाम के नियमों के अनुसार अधिकतम कहा जा सकता था।

भूमिकर के अतिरिक्त उसने गृहकर और चारागाह कर भी लगाया। अब तक राजस्व इकट्ठा करने का ढंग बहुत प्रभावशाली नही था। इससे वसूली का प्रबन्ध सशक्त करना अति आवश्यक था जिसका निदान करने के लिए अलाउद्दीन ने एक नया विभाग दीवान–ए–मुस्तखराज स्थापित किया। इसका काम यह था कि यह बकाए राजस्व से संम्बन्धित समस्त जाँच पड़ताल करके दोषी को दण्ड दिया करता था। इस प्रकार की कर व्यवस्था में किसानों पर कराभार अत्यधिक था। इसमें सन्देंह नही कि राज्य किसानों से उनकी पैदावार का 75 से 80 प्रतिशत तक कर वसूल लेता था। गयासुद्दीन ने आदेश दिया था कि राजस्व अधिकारी यह भी देखे कि कृषि का उत्पादन धीरे–धीरे बढता रहे और भ्रष्ट अधिकारियों को दण्डित किया जाए।

भू–राजस्व में मोहम्मद तुगलक का शासन काल महत्वपूर्ण है। उसने दोआब के क्षेत्र में भूमिकर में वृद्धि की यह वृद्धि कितनी थी इसकी कोई सटीक जानकारी उपलब्ध नही है हालाकि बरनी के अनुसार 10 से 20 गुना वृद्धि हुई थी, जो कि सम्भव सी प्रतीत नही होती। गयासुद्दीन तुगलक ने भूमिकर में कमी कर जनता को कुछ राहत प्रदान की। संभवता मोहम्मद तुगलक ने इसे बढाकर पचास प्रतिशत कर दिया था परन्तु जिस समय लगान बढाया गया उसी समय भीषण अकाल पडा और लगान अधिकारियों ने निर्दयतापूर्वक लगान वसूला जिससे जनता में विद्रोह भड़क उठे। बाद मे सुल्तान ने किसानों को बीज, बैल आदि दिए तथा सिचाई के लिए कुएँ खुदवाए परन्तु यह सभी नाकाफी था और राहत–सहायता कार्य काफी देर से किया गया। फिरोज ने काफी सोच विचार कर भूमिकर काफी कम कर दिया था क्योंकि सुल्तान को अनुभव था। कि कृषक के स्थायित्व से ही अच्छी पैदावार हो सकती थी। कर निर्धारण की सर्वप्रथम जानकारी हमें अलाउद्दीन के समय से होती है। वह दिल्ली सल्तनत का पहला सुल्तान था जिसने राजस्व को भूमि की नाप (मसाहत) के आधार पर निर्धारित किया। उसके लिए 'बिसवा' को एक इकाई माना गया, परन्तु यह पैमाइस पूरे भारत में नही अपितु दिल्ली और सीमावर्ती राज्यों में ही लागू थी। गयासुद्दीन के समय में खेतों की माप द्वारा कर निर्धारण की व्यवस्था छोड़ दी गई और कटाई, हुक्म–ए–हासिल को अपनाया गया। इससे उसने कृषको को असामयिक भुगतान से छुटकारा दिला दिया। परन्तु मोहम्मद तुगलक के समय में लागू जमीन की पैमाइस की कर व्यवस्था को पुनः लागू किया गया। फीरोज तुगलक के समय की महत्वपूर्ण बात यह थी कि उसने गावों, परगनो तथा सूबो का फिर से मूल्यांकन कराया। मोरलैण्ड के अनुसार " मुस्लिम युग में यह प्रथम घटना थी, जिसके द्वारा सल्तनत की आय जानने का प्रयास किया गया"।

सामान्यता राजस्व नकद वसूला जाता था, परन्तु अलाउद्दीन ने दिल्ली और दोआब के क्षेत्रो से लगान को खाद्यान के रूप में वसूला, ताकि शहरो को पर्याप्त मात्रा में अनाज उपलब्ध रहे। अनाज की कमी होने पर लोगों की जरूरत के अनुरूप शाही गोदाम खोल दिए जाते थे। चौदहवीं शताब्दी में सुल्तानो का मुख्य ध्येय कृषि की उन्नति करना था। गयासुद्दीन तुगलक ने कृषि को प्रोत्साहन देने के विचार से सिचाई के लिए नहरें बनवाई तथा कई बाग भी लगवाएं। नकद भुगतान से फसलो मे बढ़ोत्तरी हुई। मुहम्मद तुगलक ने एक प्रथक कृषि–विभाग दीवान–ए–कोही खोला, इस विभाग का कार्य मालगुजारी व्यवस्था को ठीक प्रकार से चलाना और जिस भूमि पर कृषि नहीं हो रही है उसे कृषि–योग्य बनाना था। कृषि की पैदावार को बढ़ाने का लगातार प्रयास सुल्तानो द्वारा किया जा रहा था और इसी कारण काफी हद तक कीमतें नियन्त्रण में बनी रही।

जैसे–

गेहूं– 8 जीतल प्रति मन

चना– 4 जीतल प्रति मन

दाल– 1 जीतल प्रति मन

जौ– 4 जीतल प्रति मन

चीनी– 1 जीतल प्रति मन

इतिहासकार अफीफ ने लिखा है "जीवन के लिए आवश्यक वस्तुएँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थी और फीरोज के सम्पूर्ण शासनकाल में बिना किसी प्रयत्न के अनाज के मूल्य अलाउद्दीन खिलजी के काल की भाँति सस्ते रहे। दिल्ली सुल्तानों को भूमिकर के अतिरिक्त अन्य करों से भी आय होती थी। अलाउद्दीन ने भूमिकर के अतिरिक्त चारागाह और गृह कर भी लगाया। राजस्व प्रशासन के लिए विभिन्न अधिकारी थे, वजीर सर्वोच्च अधिकारी था एंव उसकी सहायता के लिए नायब वजीर, और पूरा अमला होता था। सबसे छोटा कारकून (क्लर्क) पटवारी को अपने कर्तव्य निभाने में मदद किया करता था।

बोध प्रश्न–

(1) खाद्यान की कीमतें स्थिर रखने के लिए अलाउद्दीन ने क्या उपाय करें। 10 पंक्तियों में बताए।

_____
_____
_____
_____
_____
_____
_____

_____
_____

(2) दोआब क्षेत्र में कर वृद्धि के क्या कारण थे, 10 पंक्तियों में बताए।

_____
_____
_____
_____
_____
_____
_____
_____

6.4 सारांश

इस प्रकार कहा जा सकता है लगान वसूली की यह व्यवस्था नियमित ही रही थी जिस कारण दिल्ली सल्तनत ने एक मजबूत अर्थव्यवस्था की नींव रखी। जमीन के राजस्व के नकद भुगतान के कारण किसानों को अपना अनाज व्यापारियों को बेचने के लिए बाध्य होना पड़ता था। अनाज व्यापारियों की स्थिति में भी सुधार आया। इस राजस्व ढ़ाचे द्धारा मुद्रा प्रचलन को काफी प्रोत्साहन मिला। इसे ही बाद के शासकों ने उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त किया। इस व्यवस्था का सामाजिक प्रभाव भी महत्वपूर्ण रहा था। जो जमींदार तुर्की शासको द्वारा दबाए गये थे उनमें विद्रोह की भावना बराबर बनी रहती थी। कृषी के ढ़ाचे के बदलाव ने कृषक वर्ग को भी परिवर्तित कर दिया। अब शासक वर्ग के बीच अधिशेष उत्पादन को अधिक से अधिक हड़पने के लिए लगातार संघर्ष शुरू हुए।

6.5 शब्दावली

खालसा भूमिः सरकार के सीधे नियन्त्रण में रहने वाली भूमि

आक्ता भूमिः प्रशासन में भाग लेने वाले उच्च अधिकारियों में बंटी भूमि

तारीख–ए–फिरोजशाहीः बरनी द्वारा लिखित पुस्तक

दीवान–ए–कोहीः कृषी विभाग

6.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

(i) ✓

(ii) ×

(iii) ✓

(iv) ×

इकाई– 11 सल्तन काल में गैर कृषि उत्पादन, वृहद कुटीर उद्योग

11.0 प्रस्तावना

11.1 उद्देश्य

11.2 गैर कृषि उत्पादन, वृहद कुटीर उद्योग

- 11.2.1 वस्त्र उद्योग
- 11.2.2 लोहा व हथियार
- 11.2.3 शक्कर
- 11.2.4 नील
- 11.2.5 जड़ी–बूटियाँ व मसाले व फल
- 11.2.6 कागज उद्योग
- 11.2.7 चमड़ा उद्योग
- 11.2.8 पत्थर व ईंट उद्योग
- 11.2.9 अन्य उद्योग

11.3 सारांश

11.4 शब्दावली

11.5 स्वयंमूल्यांकन प्रश्न

11.6 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तके

11.7 अभ्यास कार्य प्रश्न

11.0 प्रस्तावना– भारत प्राचीन काल से ही औद्योगिक वस्तुओं का उत्पादन स्थल रहा है। सिन्धु घाटी सभ्यता काल से उत्पादन तथा व्यापार के साक्ष्य मिलते हैं। दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ ही शासक वर्ग भी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, राज्य के संरक्षण में वृहद पैमाने पर वस्तुओं का उत्पादन प्रारम्भ हुआ। जिसमें शासक वर्ग के लिए कीमती वस्त्र, सैनिक साजो–सामान की प्रमुखता थी। देश में कृषि के साथ–साथ अनेक उद्योग धंधे पनपने लगे। अधिक से अधिक कारीगर व शिल्पकार राज्य की सेवा में आने लगे। सल्तनत काल में गैर कृषि आर्थिक गतिविधियों का वर्णन विदेशी यात्रियों ने भी किया है।

11.1 उद्देश्य –इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे कि :–

- सल्तनत काल में गैर कृषि उत्पादन व्यवस्था कैसी थी।
- इस काल की प्रमुख उद्योग धंधो की जानकारी प्राप्त होगी।
- सल्तनत काल के प्रमुख उद्योगिक केन्द्र।
- शासक वर्ग का उद्योगो के प्रति दृष्टिकोण।

11.2 गैर कृषि उत्पादन, वृहद कुटीर उद्योग –

दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ ही लगभग पूरे उत्तरी भारत में एक सशक्त शासन व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ। उत्तरी भारत में शहरों का विकास होने लगा। यहाँ कृषि के साथ–साथ अनेक उद्योग–धंधे पनपने लगे। इसका प्रमुख कारण सुल्तानों की दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं में अधिकतर सैनिक साज–सामान, हथियार, वस्त्र, अमीर वर्ग के लिए विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन बड़े पैमाने पर राज्य के संरक्षण में होने लगा था। अधिक से अधिक कारीगर व शिल्पकार राज्य की सेवा में आने लगे। किन्तु अभी भी अनेक वस्तुओं का आयात होता था।

सल्तनत काल में राज्य द्वारा संचालित कई कारखानों को स्थापित किया गया। अफीफ ने अपनी पुस्तक "तारीख–ए–फिरोज़शाही" में लिखा है कि 'सुल्तान के पास 36 कारखाने थे। प्रत्येक वर्ष हर एक कारखाने पर बहुत सा धन व्यय किया जाता था। कारखानों का सर्वोच्च अधिकारी मुतसरिफ होता था।

11.2.1 वस्त्र उद्योग –

सल्तनत काल में वस्त्र उद्योग अत्यन्त उन्नत था। सूती, ऊनी व रेश्मी वस्त्र बनाये जाते थे। भारत में निर्मित सूती वस्त्र उत्तम किस्म के होते थे, जिनका अनेक देशों को निर्यात किया जाता था। सूती वस्त्रों के लिए कपास देश में ही उपलब्ध हो जाता था। मंगोलो ने लाहौर पर आक्रमण के अवसर पर बड़ी मात्रा में निर्यात के लिए एकत्रित कपड़े को जब्त किया था।

खाड़ी देशों में भारत का बना सूती कपड़ा पहना जाता था। बाबर ने भारतीय स्वेत वस्तों की प्रशंसा की है। बंगाल व गुजरात के बन्दरगाहों से इन देशों को सूती कपड़ा भेजा जाता था। रेशमी वस्त्रों का

उत्पादन बंगाल में तथा ऊनी कपड़ें पहाड़ी प्रदेशों में बनाये जाते थे। वस्त्रों पर कढ़ाई व कसीदाकारी का कार्य भारत के विभिन्न शहरों में किया जाता था। वस्त्रों पर रंगाई व छपाई भी की जाती थी। धनी व्यक्ति साटन, जरी व मलमल का प्रयोग करते थे वहीं गरीब व्यक्ति मोटे सूती वस्त्रों का प्रयोग करते थे। डा. अशरफ के अनुसार दिल्ली वस्त्र उद्योग का बड़ा केन्द्र था। अन्य प्रसिद्ध केन्द्र देवगीर, ढाका, सुनारगाँव, खम्मात थे। भारत के वस्त्र उद्योग के उन्नत स्वरूप के विषय में जार्ज फॉस्टर ने लिखा है – "सम्पूर्ण भारत में सर्वाधिक सुन्दर कपड़ा सोनार गाँव में बनाया जाता था। छींट बुरहानपुर, गोलकुण्डा व सिरोज में तैयार की जाती थी।" कशमीर, मुल्तान, अमृतसर ऊनी वस्त्रों के प्रमुख केन्द्र थे।

11.2.2लोहा व हथियार उद्योग –सल्तनत काल में वस्त्र उद्योग के साथ धातु उद्योग भी उन्नत दशा में था। अबुल फजल लिखते है , "भारतीय विभिन्न धातुओं व मिश्रित धातुओं से वस्तुओं के निर्माण में सिद्धहस्त थे।" सल्तनत काल में हथियारों का निर्माण मुख्यतः पंजाब व गुजरात में होता था। सोमनाथ तलवारों के निर्माण के लिए प्रसिद्ध था। अरब यात्रियों ने हिन्दुस्तान में बनी तलवारों की प्रशंसा की है और विदेशों में इनकी माँग का उल्लेख किया है। समकालीन ग्रंथों में इसे 'हिंदवी तलवार' कहा गया है, जो अपनी तेज धार के लिए प्रसिद्ध थी। ताजुल मासिर में भारत में बने खंजर की प्रशंसा की गयी है। मार्कोपोलो ने लाहौर से इस्पात का निर्यात किए जाने का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त भाले तथा तीरों के बनाए जाने और बाह्य देशों को भेजने का उल्लेख मिलता है।

11.2.3 शक्कर उद्योग – मध्यकाल के चीनी यात्रियों ने भारत में गन्ने के उत्पादन का उल्लेख किया है। भारत में बनी शक्कर व मिश्री का निर्यात सिंध के रास्ते अनेक अरब देशों को होता था। गन्ने के रस तथा शीरे से क्रमशः शक्कर व शराब बनाई जाती थी। दिल्ली व लाहौर से मुल्तान चीनी ले जायी जाती थी। जहाँ इसे काफी ऊँचे दामों में बेचा जाता था। सम्भवतः मुल्तान से चीनी थल मार्ग द्वारा विदेशों को भेजी जाती थी। बंगाल से भी शक्कर विभिन्न देशों में भेजे जाने का वर्णन मिलता है। चीनी चमड़े के थैलों में भर कर विदेशों को भेजी जाती थी।

11.2.4नील– भारत में नील का उत्पादन बड़े पैमाने पर होता था। लाहौर व बयाना का नील बहुत प्रसिद्ध था। इसका निर्यात विभिन्न देशों में किया जाता था। ईरान में नील का उत्पादन बंद हो जाने से इसकी आपूर्ति भारतीय नील से ही होती थी। बगदाद के रास्ते नील इटली (सिसली) को भी भेजा जाता था।

11.2.5 जड़ी–बूटियाँ, मसाले व फल – भारत से जड़ी–बूटियों का निर्यात विदेशों को होता था। इसके बदले बहुत सा सोना भारत आता था। ईरान के शासक गजन खाँ के प्रधानमंत्री रशीदुद्दीन द्वारा भारत भ्रमण का मुख्य उद्देश्य यहाँ से जड़ी बूटियाँ प्राप्त करना भी था। चीनी यात्रियों ने भी इस देश का जड़ी–बूटियों का हवाला दिया। भारत से गर्म मसाले जल तथा थल दोनों ही मार्गों से विदेशों को निर्यात होता था। समरकंद की मंडियों में भारतीय मसालों की बहुतायत का वर्णन मिलता है।

भारत में उत्पन्न नींबू तथा संतरों का विदेशों में काफी नाम था। यहाँ के फल अरब के रास्ते यमन, ईराकव सीरिया ले जाये जाते थे।

11.2.6 कागज उद्योग – कागज निर्माण के विषय में यह मत है कि इसकी शुरूआत चीन में हुई थी। मुसलमानों ने चीनियों से कागज का प्रयोग सीखा। कुछ विद्वानों का विचार है कि कागज का आविष्कार समरकंद में हुआ, जो फटे–पुराने कपड़ों से बनाया जाता था। अमीर खुसरों ने लिखा है कि दिल्ली में शामी कागज का प्रयोग होता था। इस काल में कागज उद्योग अधिक विकसित नहीं था। सल्तनत काल में कागल का निर्माण मुख्यतः सियालकोट, कशमीर व गया में होता था।

11.2.7 चमड़ा उद्योग –सल्तनत काल में चमड़ा उद्योग विकसित अवस्था में था। चमड़े से जूते, तलवारों की म्यानें व पुस्तकों की जिल्द बनाई जाती थी। मश्क व सिचांई हेतु 'पुर' चमड़े से बनते थे। चमड़े के थैलों मे चीनी का निर्यात होता था। चमड़े के वस्त्रों का निर्माण गुजरात में होता था।

11.2.8 पत्थर व ईंट उद्योग–सल्तनत काल में भवन निर्माण कला उन्नत थी। डा. अशरफ लिखते हैं कि "भारतीय कारीगरों की कुशलता का प्रमाण भारत की इमारतों के साथ–साथ काबुल, गजनी व समरकंद की इमारतों में भी हैं।" अमीर खुसरों ने लिखा है कि "दिल्ली के पत्थर काटने वाले समस्त मुस्लिम देशों के संगतराशों की तुलना में श्रेष्ठ थे। मुस्लिम राजाओं के साथ–साथ हिन्दू राजाओं ने भी भवन निर्माण को बढ़ावा दिया।

11.2.9अन्य उद्योग –सल्तनत काल में उपरोक्त मुख्य उद्योगों के अतिरिक्त अन्य उद्योग भी उन्नत अवस्था में थे। लकड़ी का कार्य देश के विभिन्न भागों में किया जाता था। इससे फर्नीचर व कृषि औजार बनाये जाते थे। गुजरात मूँगा उद्योग का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ से मूँगे निर्यात किये जाते थे। हाथी दाँत व जवाहरात उद्योग भी भारत में विकसित था। हाथी दाँत के कड़े, शतरंज की मुहरें, पांसे व तलवार की मूंठ आदि बनाई जाती थी। साथ ही साथ नमक उद्योग, जूट उद्योग, केसर उद्योग आदि थे। कारीगर अपने धंधे वंशानुगत रूप से चलाते थे।

11.3 सारांश – प्राचीन काल से ही भारत उत्पादन तथा व्यापार का केन्द्र रहा है। तुर्कों द्वारा दिल्ली सल्तनत की स्थापना से आर्थिक क्रियाकलापों में अपार वृद्धि हुई। मुहम्मद कासिम के आक्रमण से भारत का अरबों से प्रत्यक्ष संम्बंध स्थापित हुआ। भारतीय शासकों ने भी अरब व्यापारियों के संरक्षण प्रदान किया। इससे व्यापारिक गतिविधियों को बढ़ावा मिला। भारत में उत्पादित वस्तुओं की माँग विदेशों में बढ़ी। धीरे–धीरे भारत में बहुत से उत्पादन केन्द्र विकसित हुए।

11.4 शब्दावली

निर्यात	–	देश से माल बाहर भेजना
कसीदाकारी	–	कपड़े पर कढ़ाई करने की क्रिया

सिद्धहस्त	–	कुशल
मंडी	–	माल बेचने का स्थान या बाजार
मुतसरिफ	–	कारखाने का अधिकारी

11.5स्वमूल्यांकन प्रश्न – निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (✗) का चिन्ह लगाइए

1) तारीख–ए–फिरोजशाही के अनुसार सुल्तान के पास 36 कारखाने थे।
2) बाबर ने भारतीय स्वेत वस्त्रों की प्रशंसा की है।
3) अरब यात्रियों ने हिन्दुस्तान में बनी तलवार की प्रशंसा नहीं की है।
4) भारतीय नील इटली भेजा जाता था।
5) समरकंद की मंडियों में भारतीय मसाला नहीं मिलता था।

उत्तर–(1) (✓), (2) (✓), (3) (✗), (4) (✓), (5) (✗)

11.6संदर्भ/उपयोगी पुस्तकें

के. एम. अशरफ	–	लाइफ एंड कंडीशन ऑफ दि विपुल ऑफ हिन्दुस्तान
बी. पी. मजूमदार	–	सोशियो – इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ नार्थ इंडिया 1030–1194
डब्ल्यू. एच. मोरोलैण्ड	–	द एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इंडिया
एच. सी. वर्मा	–	मेडिवल रूट्स टू इंडिया।

11.7अभ्यास कार्य प्रश्न

i. सल्तनत काल के प्रमुख उद्योग धंधे कौन थे, वर्णन करें।
ii. सल्तनत कालीन वस्त्र उद्योग एवं नील उद्योग का वर्णन करें।
iii. सल्तनत काल के शक्कर उद्योग व जड़ी–बूटी, मसाले, फल उत्पादन का उल्लेख करें।
iv. सल्तनतकाल में लोहा व हथियार, कागज व चमड़ा उद्योग का विवरण दें।

इकाई– 12– मुगल काल में गैर कृषि उत्पादन

इकाई की रूपरेखा

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 गैर कृषि उत्पादन (मुगल काल मे उद्योग)

12.2.1 लोहा एवं इस्पात

12.2.2 अन्य खनिज उद्योग

12.2.3 वस्त्र उद्योग

12.2.4 शोरा उद्योग

12.2.5 नमक उद्योग

12.2.6 कागज उद्योग

12.2.7 चीनी उद्योग

12.2.8 नील उद्योग

12.2.9 जहाजरानी उद्योग

12.3 सारांश

12.4 शब्दावली

12.5 स्वमूल्यांकन प्रश्न

12.6 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तकें

12.7 अभ्यास कार्य प्रश्न

12.0 प्रस्तावना –

मुगलकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि प्रधान थी। किन्तु गैर कृषि उत्पाद क्षेत्र – जैसे लघु उद्योग, व्यापार आदि में भी अत्यधिक बढोतरी हो रही थी। इस काल में भारत में दस्तकारी उत्पादन व्यापक रूप से विद्यमान था। लाहौर के सूती वस्त्र मध्य पूर्व; फारस और मध्य एशिया तक भेजे जाते थे। आगरा और गुजरात में यूरोपीय कम्पनियाँ और भारतीय व्यापारी नील और कपड़ा खरीदते थे।

इस काल में कारखानों का एक विभाग था, जिसे 'बयूतात' कहते थे। जिसकी देख–रेख सरकार करती थी। मोती–हीरे–जवाहरात से लेकर तलवारों, तोप–बंदूक, भारी गोला बारूद की खरीद फरोख्त इसी विभाग की जिम्मेदारी थी। कारखानों की भूमिका न केवल घरेलू अपितु साम्राज्य के सैन्य एवं वित्तीय क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण थी।

12.1 उद्देश्य–

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे कि :–

मुगल काल में उद्योग धंधों की दशा कैसी थी।

मुगल काल के प्रमुख उद्योग धंधे कौन–कौन से थे।

मुगल कालीन प्रमुख उत्पादन केन्द्रों के विषय में।

मुगल शासकों का उद्योग धंधों के प्रति दृष्टिकोण कैसा था।

12.2 मुगल काल में उद्योग (गैर कृषि उत्पादन)

मुगल काल में भारत गैर कृषि उत्पादन सम्बंधी अपनी आवश्यकता की पूर्ति करने लगा था। मुगल पादशाह शाही परिवार और उनके अमीर वर्ग की अस्त्र–शस्त्र एवं विलासिता की वस्तुओं की आपूर्ति हेतु राज्य के संरक्षण में कारखाने जिन्हें 'बयूतात' कहा जाता था, थे। के. एम. अशरफ के अनुसार कारखानों की व्यवस्था कदाचित फारस से ली गयी है। किन्तु कारखानों का प्रसंग मौर्य शासकों, अलाउद्दीन खिल्जी और फिरोज तुगलक के समय में भी आता है। इस काल में कारीगर लौहे, तांबे, सोना, चांदी, जवाहरात, चमड़ा, लकड़ी उद्योग में लगे थे।

12.2.1 लोहा एवं इस्पात :– खनिज आधारित उद्योगों में लोहे का इस्तेमाल व्यापक रूप में होता था। इसका उपयोग कृषि उपकरणों एवं हथियार बनाने में होता था। सत्रहवीं शताब्दी में लोहे का प्रयोग बढ़ गया। चूँकि लोहे का आयात नहीं हुआ इसलिए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि लोहा अधिकतर देशी उत्पादन से ही प्राप्त होता था। लोहे का उत्पादन बंगाल, कश्मीर, लाहौर, गुजरात, अजमेर, कालिंजर,

ग्वालियर में किया जाता था। गुजरात के मुज, ऊना और सिराही तलवार निर्माण में प्रसिद्ध थे। अस्त्र शस्त्र में लोहे का प्रयोग प्राचीन काल से ही होता रहा है। मुगलों के आगमन से पूर्व तोपों, बंदूकों का प्रयोग अज्ञात था। ऐसी मान्यता है कि बाबर ने पहली बार तोपों का प्रयोग 1526 ई० में पानीपत के युद्ध में किया। 16वी ई० के संस्कृत ग्रंथ शुक्रनीति में छोटी–बड़ी तोपों एवं बारूद के प्रयोग पर प्रकाश डाला गया है। तोप का सर्वोत्तम उदाहरण गोलकुण्डा के किले में रखी औरंगजेब की ''फतेह रहव" तोप है। तोप ओर नाल मुख पर सुन्दर नक्काशी की गई है। एक अन्य तोप "मलिका–ए–मैदान" भी है, जिसे एक तुर्की इंजीनियर मोहम्मद बिन हसन रूमी ने 1549 ई० में बनाया था। इसमें पंचधातुओं का प्रयोग किया गया है। भडौच, सूरत, नवसारी, गनदेवी, दमन में जहाजरानी उद्योग; गुजरात में उत्पादित लोहे के कारण फला–फूला होगा। कच्छ क्षेत्र में लोहा इस्पात में परिवर्तित कर दिया जाता था।

12.2.2 अन्य खनिज उद्योग– सोना, चांदी, ताँबा एवं जस्ते का भी प्रयोग किया जाता था। भारत में खनिज उत्पादन में कोयला उपलब्ध ना होने के कारण कच्ची धातुओं को गलाने में जंगली लकड़ी का प्रयोग किया जाता था। भारत में सोने का उत्पादन न के बराबर था। अबुल फजल से ज्ञात होता है कि उत्तरी भारत की कुछ नदियों से सोना प्राप्त होता था। चाँदी का उत्पादन भी बहुत कम होता था। सोना, चाँदी की जरी भारत में लोकप्रिय थी। कुमायूँ की पहाडियों से सोना थोड़ा बहुत प्राप्त होता था। चाँदी राजपूताना की खानों से प्राप्त हो जाती थी। राज्य की रूची ताँबे की आपूर्ति सुनिश्चित करने में थी क्योंकि इसका प्रयोग सिक्के बनाने में होता था। ताँबा कुमायूँ की पहाड़ियों राजपूताना, लाहौर सूबे में स्थित सूखेत–मंडी की खानों से प्राप्त किया जाता था।

खनिज पदार्थों में हीरे का विशेष स्थान है। जहाँ से हीरे प्राप्त होते थे वहाँ बड़ी संख्या में मजदूर कार्य करते थे। टेवर्नियर जो एक जौहरी था, ने इस उद्योग का विस्तार से वर्णन किया है।

12.2.3 वस्त्र उद्योग – मुगल काल में वस्त्र उद्योग समृद्ध था। भारत के अनेक क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न प्रकार के कपड़ों का उत्पादन होता था। 17वीं शताब्दी में भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि के बाद सबसे महत्वपूर्ण योगदान वस्त्र उद्योग का था। सूती, रेशमी, ऊनी, पटसन के धागों की कताई बुनाई करके उनसे कपड़े बनाये जाते थे। रेशमी कपड़ो का उद्योग मुख्यतः गुजरात में, लाहौर में, आगरा में तथा इसके बाद कश्मीर, बंगाल के अतिरिक्त बनारस में ही फला–फूला। ऊनी वस्त्र उद्योग कश्मीर तक ही सीमित था। पटसन से बने कपड़े सभी मुगल प्रांतों में पाये जाते थे। सूती वस्त्र उद्योग का विस्तार सम्पूर्ण साम्राज्य में था। सूती वस्त्रों का उत्पादन स्थानीय आपूर्ति के साथ–साथ दूरदराज के बाजारों के लिये भी किया जाता था। सूती वस्त्र उत्पादन क्षेत्र में कुछ खास प्रक्रियाओं का भी विकास हुआ। जैसे कपड़ा रंगना, कपड़े की सफाई का काम, कपड़े पर छापे (ठप्पे) लगाना, उस पर चित्रकारी करना।

अवध में दरियाबाद और खैराबाद रंगीन छपाई के लिए इतने प्रसिद्ध थे कि कपड़े ही दरियाबादी, खैराबादी कहे जाने लगे। पटना, बनारस, लाहौर, मुलतान, इलाहाबाद के छपे कपड़े अपनी खास किस्म के लिए विख्यात थे। मुसली पट्टनम् भी छींट कारीगारी का श्रेष्ठ उदाहरण थी।

मुगलकाल में रंगीन कपड़ो के ऊपर सोने, चाँदी के बेलबूटों और पत्तियों के छापे लगाने का काम सर्वप्रमुख था। इस किस्म के कपड़े का प्रयोग पलंग के बिछावन, चद्दरों, रजाइयों, गद्दों, पर्दों के रूप में होता था। विलियम होए के अनुसार इस तरह के छापे वाले कपड़ों के लिए लखनऊ और फर्रूखाबाद मशहूर थे। लखनऊ का 'चिकन' विख्यात था। ढाका अपनी मलमल के विदेशों में भी जाना जाता था।

इस प्रकार सूती कपड़ा उद्योग में मुगल काल के दोरान तकनीकी विकास हुआ। भारतीय रंगरेज रंगाई और रंग बनाने की रसायनिक प्रक्रियाओं से वाकिफ था। छपाई कला की व्यापकता भी इस ओर इशारा करती है। इस काल में वस्त्र उत्पादन में भारी वृद्धि हुई और भारतीय वस्त्र कलात्मक श्रेष्ठता के शिखर पर पहुँच गये।

12.2.4 शोरा उद्योग – 17वीं शताब्दी में जैसे ही यूरोपीय कम्पनियों ने बड़ी मात्रा में शोरे का निर्यात करना प्रारम्भ किया, इसका उत्पादन बढ़ गया। भारतीय सेनाओं द्वारा तोपों के बढ़ते इस्तेमाल ने भी माँग में वृद्धि की। पेलसर्ट ने शोरा बनाने की विधि का वर्णन किया है। खान क्षेत्र में छीछला हौज खोदा जाता था। उसे खनिज और पानी से भर दिया जाता था। इस मिश्रण को देर तक हिलाते थे। इस प्रकार एक दूसरे हौज में पानी निकाल लेते थे और शोरा तह में बैठ जाता था। जिस लोहे के कड़ाहों में गर्म करके शुद्ध किया जाता था। भारत में शोरा अजमेर, अलवर और पटना से प्राप्त होता था।

12.2.5 नमक उद्योग – तटवर्ती क्षेत्रों में सीमित मात्रा में नमक का उत्पादन होता था। खम्बात और सूरत में खारे पानी के वाष्पीकरण द्वारा नमक बनाया जाता था। अजमेर सूबे में सॉमर झील और लाहौर सूबे में शम्सावाद में भी नमका का उत्पादन होता था।

12.2.6 कागज उद्योग – भारत में कागज का प्रयोग अभी भी सीमित मात्रा में ही हो रहा था। धनी व्यापारी, पांडुलिपि लेखक, सार्वजनिक अभिलेखों की देखरेख करने वाले अधिकारी ही कागज का प्रयोग करते थे। अबुल फजल के अनुसार आगरा और लाहौर के कारखाने में अधिकारियों के इस्तेमाल के लिए कागज का उत्पादन होता था। कागज का निर्माण सन, बांस की छाल, पुराने चिथड़े, पुराने कागज की रद्दी द्वारा किया जाता था। यह एक हस्तकरघा उद्योग था। कागज बनाने के लिए छाल के रेशों को पीटा जाता था। रद्दी कागज को पानी में भिगोया जाता था। उन्हें हाथ से गूँथ कर लुगदा तैयार किया जाता था। फिर

समतल सतह पर पतले रूप में फैला कर सुखाया जाता था। खुरदरी सतह को चिकना बनाने के लिए रगड़ा जाता था। उसके बाद रंगरेज उसे विभिन्न रंग में रंगता था।

12.2.7 चीनी उद्योग – उत्तरी भारत में गन्ने का उत्पादन बहुतायत में होता था। इसका इस्तेमाल गुड़, चीनी आदि बनाने में होता था। अबुल फजल चीनी की विभिन्न किस्मों जैसे खांड की मिशरी, परिष्कृत चीनी, सफेद चीनी, सफेद चीनी मिशरी का वर्णन करते हैं। बंगाल, आगरा चीनी के महत्वपूर्ण उत्पादन क्षेत्र थे। अच्छी चीनी बनाने वाले अन्य प्रांत – थट्टा, गुजरात, लाहौर, बिहार थे। परिस्कृत चीनी प्राप्त करने के लिए गन्ने के रस में दूध या नींबू जैसे पदार्थ मिलाए जाते थे। बड़े सफेद क्रिस्टल प्राप्त करने के लिए बारंबार गर्म किया जाता था।

12.2.8 नील – अच्छी क्वालिटी का नील बयाना में पैदा किया जाता था। गुजरात का सरखेज का नील दुनिया में प्रसिद्ध था। मेवात और कोल में भी व्यापक रूप से नील का उत्पादन होता था। पीटर मुण्डी के अनुसार राजपूताना में नील की खेती दूर–दूर तक फैली थी। नील निर्माण की प्रक्रिया में अनेक हौज प्रयोग किये जाते थे। पहले हौज में नील के सूखे पत्तों को भिगो कर गर्म किया जाता था। यहाँ से प्राप्त सारतत्व को दूसरे हौज में भेज देते थे। यहाँ उसे पीटा जाता था। इसके पश्चात् तीसरे हौज से गुजारा जाता था। इससे बने पेस्ट को बर्तन के ऊपर कसकर फैलाये गये कपड़े के ऊपर फैला दिया जाता था और सूखने पर अपेक्षित आकार की नील की गोलियाँ बनाई जाती थी।

12.2.9 जहाजरानी उद्योग –17वीं शताब्दी में भारतीय उपमहाद्वीप के समुद्री तट पर अनेक बन्दरगाह थे। इसके साथ ही अन्तर्देशीय जल क्षेत्र में भी यातायात बहुतायत में होता था। बंगाल में जलमार्ग से यातायात होता था। सिंध तथा गंगा नदियों का प्रयोग भी जल आवागमन के साथ व्यापारिक उद्देश्य से भी होता था।

मुगल, मराठे तथा अनेक छोटे–छोटे राज्य नौसेनिक युद्ध के लिए जहाज निर्माण में रूची ले रहे थे। बंगाल में मुगलों का एक नौसेनिक अड्डा था, जिसका संचालन 'मीर बहर' नामक अधिकारी करता था। इसका उद्देश्य फिरंगी डाकुओं से बंगाल तट की रक्षा करना था। अकबर के समय राजकीय बेड़े में 3000 जहाज थे, जो बाद में 786 जहाज ही रह गये। पूर्वी बंगाल में कई स्थानीय राजाओं के पास अपना नाव बेड़ा था। बंगाल के अतिरिक्त मुगलकाल में सिंध और कश्मीर में भी जहाज निर्माण का कार्य काफी विस्तृत था। अबुल फजल के अनुसार आवागमन का माध्यम नौकाऐं है, जिनकी संख्या कुल मिलाकर 40000 हैं। इलाहाबाद और लाहौर में विस्तृत रूप से जहाज निर्माण का कार्य होता था।

1662 में बंगाल के सूबेदार मीर जुमला के नेतृत्व में असम के विरूद्ध मुगल सेना के संचालन का आँखों देखा वर्णन इब्न मुहम्मद वली या शिहाबुद्दीन तालिश द्वारा तरीखे–फतह–असम में किया है। इस युद्ध में शाही बेड़े का प्रयोग किया गया, जिसमें 13 प्रकार के 323 जहाज थे।

गोलकुंडा के शासकों के जहाज भी दूरस्थ क्षेत्र में जाते थे। डब्ल्यू. एच. मोरलैंड गोलकुंडा के जहाज के बारे में लिखते हैं, कि उनके जहाज बहुत बड़े और बढ़िया थे। उनकी सामान ढोने की समता भी अधिक थी। सौन्दर्य और सुरक्षा दृष्टि से हमारे जहाजों से उनकी कोई तुलना नहीं थी। इनमें से कुछ जहाज 600 टन से कम नहीं थे।

17वीं शताब्दी के अंग्रेज यात्री थोमस बावरी ने कुछ नावों के नामों का उल्लेख किया है, जो बंगाल और कोरोमंडल में इस्तेमाल होती थी। "मसोला" एक समतल पेंदे वाली नाव थी। "पटीला" ज्यादा मजबूत समतल पेंदे वाली नांव होती थी, जिसका प्रयोग बंगाल में होता था। "बोरस" हल्की नाव थी, "बड़गारों" और "ओलोआका" छोटी नावें थी, जिनका प्रयोग बंगाल में नौकाविहार के लिए होता था। अंर्तदेशीय जलमार्गों वाली नावें भिन्न–भिन्न आकार की होती थी। लाहौर में 60 टन की, यमुना में 100 टन की ओर गंगा में 400–500 टन की नांव चलती थी। समुर्द में जाने वाले जहाज औसतन 200 टन के होते थे। निकोलो कोन्टी ने 15वीं शताब्दी में 1000 टन के यात्री जहाजों का उल्लेख किया है। पाइरार्ड के अनुसार भारतीय जहाज 1000–1200 टन आकार के थे।

16वीं शताब्दी के अंत में और 17वीं शताब्दी के पूर्व में जहाज निर्माण के दो महत्वपूर्ण केन्द्र कोरोमंडल तट पर नरसापुर पेटा और मादापोलूम था। 1500 ई० के लगभग अरब सागर में बने जहाजों के तख्तों को कीलों से नहीं जोड़ा जाता था, बल्कि नारियल के रेशों से बनी रस्सी से सिला जाता था। सिले जहाजों को कमजोर माना जाता था। पुर्तगाली स्त्रोतों से पता चलता है कि भारतीय जहाजों में लोहे के कीलों की शुरूआत 16वीं शताब्दी के आरम्भ में हुई। सब्राल ने लिखा है के भारत दक्षिणी–पश्चिमी तट पर जहाज निर्माण में लोहे की कीलों का प्रयोग होता था। 1593 ई० में अकबर ने रावी नदी के किनारे एक जहाज बनवाया जिसमें 468 मन और 2 सेर वजन की कीलों का प्रयोग किया गया।

इस प्रकार मुगल काल में जहाज निर्माण की उन्नत तकनीक मौजूद थी। जिसने भारतियों को शांतिपूर्वक व्यापार में सक्षम बनाया किन्तु यूरोपीय जहाजों के आ जाने के बाद भारतीय जहाज उनका सामना न कर सके क्योंकि उन्हें समुद्री युद्ध का अनुभव न था।

12.3 सारांश –

मुगल काल में वस्तुओं का उत्पादन जोश–खरोश से हो रहा था। यह उत्पादन किसानों द्वारा कृषि क्रियाकालाप से बचे समय में किया जाता था। इस काल में नील, चीनी, कागज वस्त्र आदि के उत्पादन में थोड़ी, पूँजी व सरल तकनीक से मदद मिली। उत्पादन का उद्देश्य बाजार था जहाँ से वस्तुओं की बिक्री कर अतिरिक्त आमदनी कर सकते थे। 17वीं शताबदी में दस्तकारी के कृषि से और नगरों के गाँव से पृथक होने की प्रक्रिया तीव्र हो गई। 17वीं शताब्दी में हुगली, कासिम बाजार, पटना, बुरहानपुर जैसे शहरों मे जुलाहों की जनसंख्या में वृद्धि हुई।

देश की सामाजिक व्यवस्था ने भी अर्थव्यवस्था में परिवर्तन की गति को सीमित किया। समाज में उत्पादकों की हैसियत निम्न थी, जिससे बहुत से सामाजिक वर्ग दस्तकारी कार्यकलापों में भाग नहीं लेते थे। इस कारण सामाजिक व्यस्था में कोई सशक्त बदलाव नहीं हुआ।

12.4 शब्दावली –

दस्तकारी– हाथ की कारीगरी

बयूतात – कारखाने

जहाजरानी– जहाज चलाने का काम

मसोला– समतल पेंदी वाली नांव

12.5 स्वमूल्यांकन प्रश्न –निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (✗) का चिन्ह लगाइए।

I. पेलसर्ट ने शोरा बनाने की विधि का वर्णन किया है।

II. मुगलों के आने से पूर्व तोपों बन्दूकों का प्रयोग होता था।

III. औरंगजेब की 'फतेह रहव' तोप गोलकुंडा के किले में रखी है।

IV. भारतीय रंगरेज रंग बनाने की रासायनिक प्रक्रियाओं को जानते थे।

V. अबुल फजल चीनी की विभिन्न किस्मों का वर्णन करते हैं।

उत्तर–(i) (✓),(ii) (✗),(iii) (✓),(iv) (✓),(v) (✓)

12.6 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तकें

एस.सी.राय – ए हिस्ट्री ऑफ मुगल नेवी एंड द नेवल वारफेयर

ए. दास गुप्ता – इंडियन मरचेंट एंड द डिक्लाइन ऑफ सूरत

ए. आई. चिचेराव– इंडिया : इकॉनोमिक डेवलपमेंट इन 16^{th}–18^{th} सेंचुरी : आउटलाइन हिस्ट्री ऑफ क्राफ्ट एंड ट्रेड

जे. एन. सरकार – प्राइवेट ट्रेड इन सेविन्टीन्थ सेन्चुरी, इंडिया

12.7 अभ्यासकाग्र प्रश्न

1. मुगलकालीन प्रमुख उद्योग धंधों पर प्रकाश डालिए।
2. मुगलकाल में खनिज आधारित उद्योग धंधों का वर्णन करें।
3. मुगलकालीन वस्त्र उद्योग का विवरण दें।
4. मुगलकाल में जहाजराज, कागज, चीनी उद्योग का वर्णन करें।

इकाई 3:– सल्तनत एवं मुगल काल में विदेशी व्यापार

इकाई की रूपरेखा

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 सल्तनत एवं मुगल काल में विदेशी व्यापार

13.2.1 सल्तनत काल में आयात एवं निर्यात

13.2.2 मुगल काल में विदेशी व्यापार

13.3 सारांश

13.4 शब्दावली

13.5 स्वयंमूल्यांकन प्रश्न

13.6 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तकें

13.7 अभ्यास कार्य प्रश्न

13.0 प्रस्तावना :

भारत के विदेशों से व्यापारिक सम्बंध प्राचीन काल से ही हैं। दिल्ली के सुल्तानों तथा मुगल शासकों ने इस ओर अनेक कदम उठाये। व्यापार मुख्यतः उत्तर पश्चिमी सीमवर्ती इलाकों से होकर स्थल मार्ग, नदियों तथा समुद्र के रास्ते से होता था। यूरोप के साथ व्यापारिक सम्बंध समुद्र के रास्ते फारस की खाड़ी व लाल सागर से होकर था। कुस्तुनतुनिया पर तुर्को के अधिकार के पश्चात् यूरोप का एशियाई देशों के साथ व्यापारिक सम्बंध बाधित हुआ। यूरोप के अनेक देश भारत पहुँचने के समुद्री मार्ग की खोज में लग गये, जिसमें सर्वप्रथम सफलता

पुर्तगालियों को मिली। यूरोपीय देशों में भारतीय मसाले प्राप्त करने की लालसा ने धीरे–धीरे पूरे भारतीय उपमहाद्वीप को उपनिवेश बना डाला।

13.1 उद्देश्य – इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे कि

- सल्तनत काल में विदेशी व्यापार की दशा।
- सल्तनत काल में आयात व निर्यात की जाने वाली वस्तुऐं।
- मुगलकालीन विदेशी व्यापार।
- मध्यकाल के व्यापारिक केन्द्र।

13.2 सल्तनत एवं मुगल काल में विदेशी व्यापार – भारत में विदेशी व्यापार प्राचीन काल से ही हो रहा है। जिसकी निरन्तरता मध्यकाल में भी दिखाई पड़ती है। विभिन्न देशों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार की वस्तुऐं आयात करनी पड़ती हैं। मध्यकाल में भारत का विदेशी व्यापार जल व थल दोनों मार्गों से होता था।

13.2.1 सल्तनत काल में आयात एवं निर्यात – विभिन्न देश अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक वस्तुओं का आयात व निर्यात करते हैं। मध्यकाल में भारत में आयात होने वाली वस्तुओं में घोड़े सर्वोपरि थे।

आयात

घोड़े– इस काल में घुड़सवार सेना, सेना का प्रमुख अंग थे। भारत में अच्छी नस्ल के घोड़े नहीं होते थे। भारत अच्छी नस्ल के घोड़ों का आयात अरब देशों, तुर्किस्तान, ईरान, आदि से करता था। इब्नबतूता के अनुसार तुर्किस्तान में अज्रक के लोगों ने भारत के निर्यात के लिए घोड़ों की एक विशेष नस्ल तैयार की थी। मार्कोपोलो भी ईरान से भारत के लिए घोड़ों के निर्यात का उल्लेख करता है। घोड़े जल एवं थल दोनों रास्तों से भारत लाए जाते थे।

अस्त्र–शस्त्र – घोड़ों के बाद आयातित वस्तुओं में हथियारों का विशेष स्थान था। ईरान व ट्रांसआक्सियाना के शहरों में हथियार बनाने के कई केन्द्र के, जहाँ से भारत के अतिरिक्त अन्य देशों को हथियार भेजे जाते थे। मार्कोपोलो ने किरमान में बनी तलवारों का उल्लेख किया है। ये तलवारें भारत से आयातित इस्पात से बनाई जाती थी। इब्न–बतूता अपने साथ ऊँटों पर तीर लाद कर भारत लाया था।

दास – दासों में शासक वर्ग की विशेष रूचि थी। इल्तुतमिश के दरबार में चीनी व्यापारियों द्वारा तुर्की दास लाने का उल्लेख मिलता है। अलाउद्दीन खिल्जी के काल में खिताई और तुर्की दास लड़के लड़कियों के आयात का प्रसंग मिलता है। ऐसा उल्लेख है कि विदेशों से मंगाए गए दास अधिक चुस्त एवं फुर्तीले होते थे।

वस्त्र – भारत में उत्तम कोटि के कपड़े का उत्पादन होता था। फिर भी विशेष प्रकार के वस्त्रों का आयात किया जाता था। तारीखे तबरिस्तान में अमूल नामक स्थान पर भारतीय व्यापारियों द्वारा विभिन्न किस्म के कपड़ों के क्रय करने का उल्लेख है। अलसी नामक कपड़ा महँगा था। इसका उपयोग वे लोग ही कर पाते थे, जिन्हें सुल्तान ने इसे इनाम में दिया हो। यह वस्त्र फस तथा सिकन्दरिया से मँगाया जाता था। दिल्ली के सुल्तान व उच्च अधिकारी तुर्की टोपियाँ, ख्वारिज्म की कमीज व रेशमी पगड़ी पहनते थे। मुहम्मद तुगलक के काल में शीत ऋतु के वस्त्र विदेशों से मँगाए जाने का विवरण है।

मेवे एवं फल – मध्यकाल में भारत और चीन में अंगूर व अंजीर पैदा नहीं होती थी। अंगूर ईरान से भारत आता था। इब्नबतूता के अनुसार भारत आने वाले विदेशी यात्रियों द्वारा भेंट में लाई जाने वाली वस्तुओं में सूखे मेवे प्रमुख थे। वह ख्वारिज्म से तरबूजों के आयात का भी जिक्र करता है। अन्य आयातित वस्तुओं में ताँबा, चाँदी, तूतिया, ऊँट, जैतून का तेल, गुलाब जल, खजूर व शीशे आदि का भी उल्लेख मिलता है।

मध्यकाल में भारत बहुत सी उत्तम् वस्तुओं का उत्पादन केन्द्र था जिनकी माँग विदेशों में थी।

निर्यात

लोहा व हथियार – अरब यात्रियों ने हिन्दुस्तान में बनी तलवारों की प्रशंसा की है, और विदेशों में इनकी माँग का उल्लेख किया है। इसे "हिंदवी तलवार" कहा गया है, जो अपनी तेज धार के लिए प्रसिद्ध थी। मार्कोपोलो ने लाहौर से इस्पात निर्यात का उल्लेख किया है। भारत में बने भाले व तीर बाह्य देशों में भेजने का उल्लेख भी मिलता है।

सूती वस्त्र – भारत में बने सूती वस्त्रों की माँग खाड़ी देशों में थी। बंगाल व गुजरात के बंदरगाहों से सूती कपड़ा समुद्री मार्ग द्वारा अनेक देशों को भेजा जाता था।

शक्कर–भारत में बनी शक्कर व मिश्री सिंध के रास्ते अरब देशों को भेजी जाती थी। बंगाल की शक्कर का विभिन्न देशों को भेजे जाने का वर्णन मिलता है।

नील– भारतीय नील की माँग विदेशों में थी। बगदाद के रास्ते नील सिसली (इटली) भेजा जाता था। लाहौर व बयाना का नील बहुत प्रसिद्ध था।

जड़ी–बूटी व मसाले – भारत से गर्म मसाले व जड़ी–बूटियाँ जल व थल मार्ग द्वारा विदेशों को भेजे जाते थे। समरकंद की मंडियों में भारतीय मसाले की बहुतायत का वर्णन मिलता है।

अन्य निर्यात होने वाली वस्तुओं में फल, हीरे, कागज, पुस्तकें, चंदन, अंबर, लाल मोती प्रमुख थे। भारतीय फल अरब के रास्ते यमन, ईराक व सीरिया से लाये जाते थे। हाथी दाँत, भारतीय गैंडे के सींग व भारतीय मोरों के निर्यात का उल्लेख मिलता है। गैंडे के सींग की माँग चीन में थी। बाबरनामा से ज्ञात होता है कि कश्मीर के लोग केसर, कस्तूरी व ताँबें के व्यापार में संलग्न थे।

13.2.2 मुगल काल में विदेशी व्यापार – पूर्व मुगल काल में शासकों द्वारा स्थापित शांति व्यवस्था के कारण हिन्दुस्तान में व्यापार एवं वाणिज्य शांति व्यवस्था के कारण हिन्दुस्तान में व्यापार एवं वाणिज्य फला–फूला था। किन्तु मुगल काल में विशाल साम्राज्य में एक समान शासन व्यवस्था के कारण व्यापार वाणिज्य को बल मिला। व्यापारियों, व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा व मंडियों बाजारों की व्यवस्था मुगल शासकों के प्रमुख उद्देश्य में से था। जिससे भारत के व्यापारिक सम्बन्ध विदेशों से स्थापित हो सके, तथा व्यापारिक गतिविधियाँ निर्बाध चलती रहे।

भारत के विदेशों से व्यापारिक संबंध सल्तनत काल से ही थे। इस काल में व्यापार मुख्य रूप से उत्तर–पश्चिमी सीमवर्ती इलाकों से जल व स्थल मार्ग से होता था। यूरोप के साथ सम्बंध समुद्र के रास्ते फारस की खाड़ी व लाल सागर से होकर था। किन्तु 1453 ई० में कुस्तुनतुनिया पर तुर्कों के अधिकार हो जाने से यह सम्बंध बाधित हुआ। यूरोप के अनेक देश भारत पहुँचने के समुद्री मार्ग की खोज में लग गये। जिसमें सफलता पुर्तगालियों को मिली।

पुर्तगालियों के मालाबार तट पर पहुँचने से भारत के यूरोप के साथ सीधे सम्बंध स्थापित हो गये। 1503 ई० में पुर्तगालियों ने किलेबंदी प्रारम्भ कर दी। 1510 में पुर्तगालियों ने गोवा को अपना प्रमुख प्रशासनिक केन्द्र बना लिया। मलक्का और ओरमुज पर नियंत्रण स्थापित करने के साथ ही पुर्तगाली पूरे समुद्र के मालिक बन बैठे। पुर्तगालियों की नजर भारतीय मसालों पर थी, जिसकी मांग यूरोप में अत्यधिक थी। पुर्तगाली मसालों के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित करना चाहते थे, जिसके लिए उन्होंने बल का प्रयोग किया।

पुर्तगालियों ने व्यापारिक व राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने के साथ–साथ पोप से विशेष विज्ञप्ति जारी करा के सभी नई खोजों व विजित प्रदेशों पर स्वामित्व हासिल कर लिया। अब उनकी अनुमति के बिना किसी भी देश का जहाज समुद्र में नहीं आ सकता था। यहाँ तक कि भारतीय शासकों के जहाज भी बिना पुर्तगाली लाइसेंस के समुद्र में नहीं उतर सकते थे।

पुर्तगालियों के एकाधिकार को डच व अंग्रेज व्यापारियों ने चुनौती दी। इस व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा में त्रिदलीय संघर्ष पुर्तगालियों–डचों व अंग्रेजों के मध्य चला। बाद में यह संघर्ष अंग्रेजों व फ्रांसीसियों के बीच रहा। जिसमें अंततः अंग्रेजों ने भारतीय समुद्री व्यापार पर अधिकार स्थापित कर लिया।

भारतीय निर्यात की वस्तुओं में कपड़ा, अनाज, चीनी, तिलहन, तेल, नील, शोरा, कपूर, लौंग, नारियल, सुगंधित पदार्थ, केसर, चंदन की लकड़ी, अफीम, काली मिर्च, मसाले, पारा, औषधियाँ, मोती, पशुओं की खाल आदि थे। दक्षिण–पूर्वी देशों में कपड़े की माँग थी। जावा, सुमात्रा, बोर्निया, मलाया पेगू को कपड़े भेजे जाते थे। इंग्लैण्ड व हॉलैण्ड में भी भारतीय कपड़ों की भारी माँग थी। सत्रहवीं शताब्दी में भारतीय कपड़ों की 8 हजार गांठे बनती थी, जिसमें 4 हजार गांठे यूरोपीय देशों को भेजी जाती थी। भारतीय रेशम

का बना ताफता एवं बूटेदार कपड़े का निर्यात किया जाता था। सूरत, बनारस, बंगाल, अहमदाबाद का रेशमी कपड़ा बर्मा, मलाया, यूरोपीय देशों को भेजा जाता था। उड़ीसा, बंगाल, मालवा में उत्पादित लाख अरब व खाड़ी देशों को निर्यात होती थी। बिहार व मालवा से अफीम का निर्यात पेगू, जावा, मलाया को किया जाता था। पूर्वी अफ्रीका को कपड़े, मसाले, मनके निर्यात होते थे। नारियल, नील, केसर, बहुमूल्य पत्थर, लाख, चंदन की लकड़ी, औषधि, मोती अरब व खाड़ी देशों को निर्यात होता था। चीनी काबुल, फ्रांस व ईराक को भेजी जाती थी। लोहा, आँवला, बहुमृल्य रत्न, शीशा चमड़ा आदि का भी निर्यात होता था।

कुछ विदेशी वस्तुओं का आयात भी इस काल में होता था। जैसे सोना, चाँदी, ताँबा, जस्ता, अफीम, केसर, सिंदूर, चीनी मिट्टी, सिल्क, घोड़े, विलासिता की वस्तुऐं आदि।

चीन, जापान, मलक्का, अफ्रीका से सोना, चाँदी, ताँबा भारत आता था। अफ्रीका से हाथी दाँत व लाख का आयात होता था। यूरोप से शीशा, सिल्क, सुगंधित इत्र, खिलौने व विलासिता की वस्तुऐं मंगायी जाती थी। अरब देशों से सोना, चाँदी, जस्ता, केसर, सिंदूर, गुलाब जल, घोड़े भारत आते थे। लंदन एवं तुर्की से भी उत्तम नस्ल के घोड़े आते थे। इसके अतिरिक्त औषधियाँ, मुसब्बर, लाल एवं सफेद चीनी मिट्टी, सूखे मेवे, फल, अम्बर, हींग आदि वस्तुओं का भी आयात होता था।

13.3 सारांश – दिल्ली के सुल्तानों व मुगल शासकों ने भारत में सुरक्षा व शांति बनाई रखी। तुर्कों की भाँति मुगल भी शहरी लोग थे जिन्होंने अनेक नगरों का निर्माण कराया तथा पुराने नगरों का विकास किया। व्यापरियों व व्यापारी मार्गों की सुरक्षा, मण्डी एवं बाजारों की सुरक्षा मध्यकालीन शासकों का प्रमुख उद्देश्य था, जिससे हिन्दुस्तान के अनेक देशों के साथ व्यापारिक सम्बंध बने रहे तथा वाणिज्य एवं व्यापारिक गतिविधियाँ निर्बाध चलती रही।

13.4 शब्दावली –

निर्यात – माल बाहर भेजना।

आयात – उत्पादों को बाहर के देशों से अपने देश में लाना।

बंदरगाह– समुद्र के किनारे जहाज ठहरने का स्थान।

एकाधिकार – एक ही व्यक्ति या संस्था का अधिकार।

मंडी– सामान बेचने का स्थान।

13.5 स्वयंमूल्यांकन प्रश्न –निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (✗) का चिन्ह लगायें –

1. भारत अच्छी नस्ल के घोड़े का आयात अरब देशों से करता था।
2. इब्नबतूता अपने साथ ऊँटों पर तीर लादकर भारत लाया था।
3. मार्कोपोलो लाहौर से इस्पात निर्यात का उल्लेख करता है।
4. तुर्कों ने 1553 कुस्तुनतुनिया पर अधिकार कर लिया।

5. पुर्तगाली सबसे पहले गुजरात के तट पर पहुँचे।

उत्तर–(i) (✓),(ii) (✓),(iii) (✓),(iv) (✗),(v) (✗)

13.6 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तकें –

के.एन.चौधरी – कैम्ब्रिज इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया।

के.एम. अशरफ – लाइफ एण्ड कंडीशन ऑफ दी पिपुल ऑफ हिन्दुस्तान।

एच.सी.वर्मा – मेडिवल रूट्स टू इंडिया।

13.7 अभ्यास कार्य प्रश्न –

1. मध्यकाल में भारत के विदेशों से व्यापारिक सम्बंध पर एक निबंध लिखिए।
2. सल्तनत काल में आयात की जाने वाली वस्तुओं का वर्णन करें।
3. मध्यकाल में निर्यात की जाने वाली वस्तुओं का वर्णन करें।
4. मुगलकाल में विदेशी व्यापारिक सम्बंधों पर चर्चा करें।

इकाई:14:—मध्यकालीन भारत में आंतरिक व्यापार

14.0 प्रस्तावना

14.1 उद्देश्य

14.2 मध्यकाल में आंतरिक व्यापार

14.2.1 प्रमुख व्यापारिक केंन्द्र

14.2.2 स्थल मार्ग

14.2.3 जल मार्ग

14.2.4 व्यापारी वर्ग

14.2.5 व्यापारिक पद्धति

14.3 सारांश

14.4 शब्दावली

14.5 स्वमूल्याकंन प्रश्न

14.6 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तकें

14.7 अभ्यास कार्य प्रश्न

14.0 **प्रस्तावनाः**

मध्यकाल में देश के सभी भाग किसी न किसी वस्तु के लिए दूसरे भाग पर निर्भर थे। कुछ प्रदेशों में किसी खास वस्तु का उत्पादन होता था और अन्य प्रदेश मे कम होता था या नहीं होता था। देश के विभिन्न प्रदेशों द्वारा विविध वस्तुओ की मांग आपूर्ति का कार्य व्यापारी समुदाय द्वारा किया जाता था। इस काल में विविध वस्तुओं के लिए मंडी होती थी जहाँ स्थनीय व गैर स्थानीय व्यापारी अपनी वस्तुओं का विक्रय करते थे। इसके अतिरिक्त गाँवों एवं कस्बों में साप्ताहिक बाजार तथा हाटें लगती थी ,जहाँ लोग क्रय विक्रय करते थे।

14.1**उद्देश्य :**

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेगे कि :

- मध्यकाल में आन्तरिक व्यापारिक कैसा था।
- मध्यकाल के प्रसिद्व उत्पादन केन्द्र।
- मध्यकाल के व्यापारिक वर्ग।
- मध्यकाल की व्यापारिक पद्वतियाँ।
- मध्यकाल के व्यापारिक मार्ग।

14.2 **मध्यकाल में आतरिक व्यापार :–**

मध्यकाल में शासको ने सुरक्षा एंव शांति व्यवस्था बनाये रखने के भरपूर प्रयास किए। शासको ने स्थानीय लोगों एवं व्यापारियों को सुविधा प्रदान करने के लिए अनेक बाजारों, धार्मिक स्थलों, उद्यानों,सरायों आदि का निर्माण कराया। धीरे–धीरे नगर उत्पादन का केन्द्र बनने लगे। व्यापारिक स्थानीय खपत से अधिक तैयार माल को दूसरे स्थान पर ले जा कर बेचने लगे।अनेक नगर धीरे–धीरे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक केंद्र बन गए।

आंतरिक व्यापार स्थल व जल दोनों मार्गो से होता था। दिल्ली, लाहौर, मुल्तान, उच्छ, अजोधन, दीपालपुर, सुनाम, समाना, हाँसी, सुरसुती, देवल, थट्टा, भक्खर, पटना, इलाहाबाद, अजमेर, औरंगाबाद आदि नगर आपस मे अनेक मार्गो से जुडे थे। साथ ही देश के अनेक मार्गो से भी इनके सबंध थे।

14.2.1 **प्रमुख व्यापारिक स्थलः–**

थट्टा सिंध के बीच स्थित एक टापू था। मिनहाज, इब्नबतूता आदि ने इस नगर का रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है। यहाँ बडे–बडे बाजार, उद्यान, यात्रियों के लिए सराय थी। यह नगर मुल्तान तथा अन्य नगरों से जल मार्ग द्वारा जुडा था।

देवल– मध्यकाल का समद्ध व्यापारिक केन्द्र था। यह अन्तर्राष्ट्रीय बन्दरगाह का कार्य करता था। यहाँ के निवासी देश–विदेश की व्यापारिक वस्तुओं का संग्रह करते थे। यहाँ का चावल दिल्ली जाता था।

दिल्ली–दिल्ली का राजनैतिक और व्यापारिक दृष्टि से विशेष महत्व था। यह देश के अन्य भागों से बडे–बडे राजमार्गो से जुडा था। यमुना नदी के तट पर स्थित होने के कारण यह जल मार्ग से भी अनेक नगरो से जुडा था। दिल्ली के सुल्तानो ने अपनी दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओ का निर्माण अपने संरक्षण मे प्रारम्भ किया था। जिसके परिणामस्वरुप दिल्ली विभिन्न वस्तुओ का उत्पादन केंन्द्र बन गया। दिल्ली के बाजारों का उल्लेख अमीर खुसरो एवं बरनी ने अपने ग्रंथों में किया है।

खम्भात– समुद्र के किनारे स्थित था। यहाँ समुद्री जहाज आसानी से आ–जा सकते थे। विदेशी यात्री बर्थोमा ने उल्लेख किया है कि विभिन्न देशों से तीन सौ विदेशी जहाज प्रतिवर्ष आते थे। खम्भात का रेशम मूल्यावान वस्तुओ में से एक था,जिस पर अलाउद्दीन खिलजी ने रोक लगा दी थी।

अन्हिलवाड–14वी शताब्दी तक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था।

धार– धार मालवा की राजधानी एवं व्यापार का केन्द्र था। गेंहूँ का उत्पादन यहाँ अच्छा होता था। यहाँ से दिल्ली को धान भेजे जाते थे। मुहम्मद तुगलक ने यहाँ एक विशाल खानकाह के निर्माण का आदेश दिया था।

देवगीर–दक्षिण मे देवगीर एक प्रमुख नगर था। यहाँ के निवासी अधिकतर व्यापारी थे। जो रत्नों का व्यापार करते थे। यहाँ अनार अगूँर पैदा होता था। यह सूती वस्त्र निर्माण का केन्द्र था। अमीर खुसारो ने यहाँ के रंग बिरगें वस्त्रों की तुलना रंग बिरगें फूलों से की है।

बंगाल चावल तथा रेशम के लिए प्रसिद्ध था। सतगाँव, ढाका, सोनारगाँव, चिटगाँव आदि के उत्पादन देश–विदेश के अनेक भागो में भेजे जाते थे।

सतगाँव–पूर्वी भारत का सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यापारिक नगर था। सतगाँव की रेशमी रजाइयों का आगरा एवं पटना भेजे जाने का उल्लेख मिलता है।

सोनारगाँव–यहाँ दिल्ली, लाहौर, आगरा के व्यापारी आते थे। ढाका की मलमल देश विदेश में प्रसिद्ध थी। यह बंगाल के उत्पादन का निर्यात केन्द्र भी था।

आगरा– लोदी शासकों के काल में महत्वपूर्ण व्यापारिक केंन्द्र बन गया। यमुना नदी पर स्थित होने के कारण अनेक नगरों से जुडा था। आगरा से सभी दिशाओ के लिए मार्ग निकलते थे। बंगाल से व्यापारिक वस्तुऐ नदी मार्ग से आगरा आती थी। यहाँ से ये माल गुजरात भेजा जाता था।

बनारस– सोने, चाँदी तथा जरी के काम के लिए प्रसिद्ध था। बनारस के साथ–साथ पटना भी प्रमुख व्यापारिक केंन्द्र था। इन दोनों स्थानों सें बंगाल का उत्पादन सम्पूर्ण उत्तरी भारत में तथा काबुल के रास्ते फारस, समरकंद आदि मे भेजा जाता था।

इसके अतिरिक्त बयाना, कोल, कन्नौज, संभल, ग्वालियर, चंदेरी आदि नगरों का उल्लेख भी मिलता है। बयाना नील, कन्नौज इत्र एवं शक्कर, कडा–मनिकपुर चावल,गेंहूँ, शक्कर के लिए प्रसिद्ध था। हिसार–फिरोजा का क्षेत्र तिलहन व दालों के लिए प्रसिद्ध था। जिसे देश के ऊच्च भागो मे भेजा जाता था। अजमेर , बीकानेर, आंबेर,जोधपुर चित्तौड़ आदि नगर स्थल मार्ग से जुडे थे।

14.2.2 स्थल मार्ग–

देश के लगभग सभी स्थलमार्ग एवं जलमार्ग से जुडे थे। व्यापारियों की सुविधा के लिए जगह–जगह पर सराय, तालाब, कुँए बनवाये गये थे।

दिल्ली सल्तनत की राजधानी थी। यह अनेक मार्गो द्वारा देश के विभिन्न मार्गो से जुडी थी। दिल्ली से एक मार्ग बदायूँ, कन्नौज, इलाहाबाद, बनारस होते हुए बंगाल जाता था। एक अन्य मार्ग बरन (बुलन्दशहर), बदायूँ, फर्रूखाबाद, कन्नौज, बनारस, बोधगया होकर गौड़ जाता था। दिल्ली से पटना का मार्ग आगरा, कालजी,कडा, इलाहाबाद, बनारस होकर जाता था। दिल्ली से मालवा का मार्ग ग्वालियर एवं नागौर होकर जाता था। दूसरा ग्वालियर एवं बयाना के रास्ते चंबल घाटी से होकर जाता था। दिल्ली से रणथम्भौर का र्मा मेवात के जंगलों से होकर जाता था। केन्द्रीय भारत की और जाने वाला मार्ग मथुरा , आगरा के रास्ते चंदेरी, सांरगपुर रायसीना होकर उज्जैन जाता था। उज्जैन से सीधा खम्भात जाया जा

सकता था। दिल्ली से अजमेर , कुम्भलगढ़, आबू, आदि से होकर भी खम्भात जाया जा सकता था। दिल्ली से लाहौर का रास्ता बादली, नरेला, सोनीपत, गन्नौर, समलखा, पानीपत, करनाल, सरहिंद होकर था।

आगरा से भी अनेक मार्ग विभिन्न दिशाओ मे जाते थे। बावर आगरा एवं ग्वालियर के मध्य एक मार्ग का उल्लेख करता है। तारीखे मुबारकशाही में आगरा से नागौर जाने वाले मार्ग का उल्लेख है। एक अन्य मार्ग आगरा से चित्तौड़, भेडता, जालौर होकर अहमदाबाद जाता था। आगरा से अजमेर फतेहपुर, हिंडौन, लालकोट होकर भी एक मार्ग का उल्लेख है।

14.2.3 जल मार्ग–

स्थल मार्ग के साथ–साथ जल मार्ग भी व्यापार का प्रमुख साधन थे। जल मार्ग से माल ढोने का अपेक्षाकृत सस्ता पडता था। बंगाल, सिंध, कशमीर में वस्तुएं नौकाओ द्वारा ही भेजी जाती थी। सल्तनत काल की अपेक्षा मुगलकाल में जल मार्ग का उपयोग अधिक होता था। सिंध नदी मे नौकाचालान के सर्वाधिक उदाहरण मिलते है। उत्तर भारत में गंगा एवं उसकी सहायक नदियों का जल मार्ग का काम करती थी। इलाहाबाद से बनारस व पटना के रास्ते बंगाल मे ढाका तक व्यापारिक माल जाता था। यमुना नदी आगरा व इलाहाबाद को जोडती थी। बंगाल व उड़ीसा बालासोर, मिदनापुर, कासिम बाजार व राजमहल के रास्ते जल मार्ग से जुडे थे। मुंगेर व पटना के बीच नौकाओ से माल जाने के उदाहरण मिलते है। विदेशी यात्री फिंच आगरा से सतगाँव नौकाओ के काफिले के साथ गया था।पीटर मुंडी ने इटावा के पास नदी में नौकाओ के बेड़े का उल्लेख किया है। अबुल फजल सिंध में थट्टा में विभिन्न प्रकार की चालीस हजार नौकाओ का उल्लेख करता है।

14.2.4 व्यापारिक वर्ग–

व्यापारिक वर्ग सामाजिक व आर्थिक रुप मे लगभग एक जैसा था, किन्तु विभिन्न जाति समूहों में बँटा था। जैसे बनिया, सौदागर , व्यापारी, ताजिर, महाजन, साहूकार, बोहरा, सर्राफ, दलाल, आढतिया आदि। जात के आधार पर व्यापारियों के अनेक वर्ग थे। मीराते–अहमदी के अनुसार अहमदाबाद मे मुसलमान व्यापारियो को छोडकर हिन्दू व्यापारियो की 84 जातियाँ व उपजातियाँ थी।

समाजिक व आर्थिक दृष्टि से समूह बडे व्यापारियों का बडे–बडे व्यापारिक प्रतिष्ठानो व भंडारों पर एकाधिकार था। तथा देश का आंतरिक व्यापार मुख्य रुप से इन्हीं बडे व्यापारी बाहर जी बोहरा, काशीविरन्ना, जगत सेठ, अब्दुल गफूर थे। बड़े व्यापारियों की सहायता के लिए एजेंट व दलाल होते थे। दलाल कमीशन पर खरीद –फरोख्त में सहयोग करते थे।

व्यापारिक गतिविधियों मे शाही परिवार के सदस्यों एवं उच्च अधिकारियो के जुडने के वर्णन मिलते है। नूरजहाँ व आसफ खाँ तथा अनेक मुगल अमीरो के व्यापारिक जहाज देश के भीतर व बाहर के व्यापार में लगे थे। गोलकुंडा के मीर जुमला का भी व्यापारिक गतिविधियों में शामिल होने का उल्लेख है।

14.2.5 **व्यापारिक पद्धतिः–**

व्यापारिक गतिविधियो के लिए वित्तिय सहायता एवं ऋण सम्बंधी सुविधाओं का होना आवश्यक है।यद्यपि उस काल में बैंक सुविधा नही थी फिर भी ऋण सम्बंधी सुविधाये उपलब्ध थी।

हुड़ी: ऋण व्यवस्था मे हुड़ी का प्रयोग महत्वपूर्ण था। अबुलफजल लिखता है कि इस देश में जब किसी को दूर धन ले जाना होता था,तो वह अपना धन साहूकार को दे देता था जो उसे धन के बदले लिखा हुआ कागज का टुकड़ा देता था, जिसे दिखाकर वह गंतव्य स्थान पर अपना पूरा धन प्राप्त कर सकता था। कागज का टुकड़ा ही हुंडी कहलाता था। सुजान राय खत्री ने भी हुंडी का वर्णन किया है।

हुंडी का प्रयोग व्यापारी वर्ग के साथ प्रशासन व अमीर भी करने लगे थे। अबुल फजल ने लिखा है कि 1599 मे शाही सेना के लिए हुंडी द्वारा तीन लाख रुपये भेजे गये थे। 17वीं शताब्दी में बंगाल का राजस्व हुंडी द्वारा भेजा जाने लगा था।

मध्यकाल में व्यापारिक गतिविधियों के संचालन में ब्याज पर धन की प्राप्ति, मुद्रा प्रणाली तथा नाप तौल की इकाइयों की एकरुपता को भी महत्वपूर्ण योगदान था। अकबर ने 40सेर का वनज 30दाम के वनज के बराबर रखा था। इस प्रकार मन का माह 55.32 पौंड था जो पूरे मुगल सामराज्य मे प्रचलित था।

14.3**सारांश :**

मध्यकाल मे शासक वर्ग द्वारा स्थापित शांति एवं सुरक्षा के कारण अनेक उत्पादन केन्द्रो का विकास हुआ । जहाँ की वस्तुऐं की देश के विभिन्न भागो में माँग थी। इन वस्तुओं की बिक्री देश के छोटी बडी मंडियों मे होती थी। व्यापारी वर्ग व्यापार के उद्देश्य से गाँव–गाँव, शहर–शहर वस्तुओ को ले जाते थे। जिससे देश के एक हिस्से के दूसरे हिस्से से व्यापारिक सम्बंध स्थापित हुए।

14.4**शब्दावली :–**

हाट– गाँव में लगने वाला स्थानीय बाजार

हुंडी– कागज का एक टुकडा जिसे देखकर देय व्यक्ति उक्त व्यक्ति को धन देता था।

दलाल– बिचौलिया या मध्यस्थ

सर्राफ– सोने, चाँदी का व्यापारी

आढ़तिया– कमीशन लेकर माल बिकवाने वाला

14.5**स्वमूल्यांकन प्रश्न :–**

निम्नलिखितं कथनो पर सही(✓) या गलत(✗) के चिन्ह लगाये।

1 थट्टा सिंध नदी के बीच स्थित एक टापू था।

2 देवल अन्तर्राष्ट्रीय बंदरगाह के रुप मे कार्य करता था।

3 धार में फिरोज तुगलक ने खानकाह का निर्माण करवाया।

4 बनारस सोना,चाँदी, जरी के काम के लिए प्रसिद्ध था।

5 सतगाँव रेशमी रजाइयों के लिए प्रसिद्ध था।

उत्तर–(1) (✓), (2) (✓), (3) (✗), (4) (✓), (5) (✓),

14.5.6 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तकें–

के. एम. अशरफ – लाइफ एंड कंडीश, ऑफ दि पिपुल आफ हिन्दुस्तान,

डब्ल्यू. एन. मोटोलैण्ड– सोशियो इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ नार्थ इंडिया,

के. एन. चौधरी– कैम्ब्रिज इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया,

जे. एन. सरकार– प्राइवेट ट्रेड इन सेविन्टीन्थ सेन्चुरी, इंडिया।

14.5.7 अभ्यासकार्य प्रश्न–

1.मध्यकाल में आन्तरिक व्यापार का वर्णन करें।

2. मध्यकाल के प्रमुख व्यापारिक स्थलों का विवरण दे।

3. मध्यकालीन व्यापारी वर्ग की चर्चा करे।

4. मध्यकाल की प्रमुख व्यापारिक पद्धतियों का उल्लेख करे।

इकाईः 15—मध्यकालीन भारत में नगरीयकरण —यातायात

इकाई की रूपरेखा

15.0 प्रस्तावना

15.1 उद्देश्य

15.2 मध्यकाल मे नगरीकरण

15.2.1 सल्तनत काल में नगरीकरण

15.2.3 मुगकाल मे नगरीकरण

15.3 मध्यकाल में यातायात

15.4 सारांश

15.5 शब्दावली

15.6 स्वमूल्याँकन प्रश्न

15.7 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तकें

15.8 अभ्यास कार्य प्रश्न

15.0 प्रस्तावनाः—

मध्यकाल मे नगरीकरण भारत में होने वाली कोई नई प्रक्रिया नहीं थी। क्योंकि हडप्पा काल तथा छठी शताब्दी ई0 पू0 भारत में नगरीकरण के साक्ष्य मिलते है। मध्यकाल का शासक वर्ग शहरी जीवन का अभ्यस्त था। साथ ही नए शासक वर्ग को सशस्त्र विद्रोह का भय भी बना रहता था। इसलिए अपनी रक्षा के लिए किले बनवाये, तोपखानो का गठन किया। यहाँ तक कि सूफी दरगाहों का निर्माण करवाने फकीरों की भी सहायता लेते थे। इन सभी कारणो से शहरी आबादियों का विकास हुआ,जो किलेबंदी के द्वारा सुरक्षित होती थी।

मध्यकालीन भारत में आवागमन के लिये स्थल एवं जल मार्ग का प्रयोग होता था। इन मार्गों का प्रयोग व्यापारी तथा सैनिक दस्ते दोनों ही करते थे।

15.1 उद्देश्यः–

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेगे किः–

- सल्तनत कालीन नगरीकरण की प्रक्रिया।
- सल्तनत कालीन प्रमुख नगर।
- मुगलकालीन नगरीकरण की प्रक्रिया।
- मध्यकाल में यातायात के साधन।

15.2 मध्यकाल में नगरीकरणः–

मध्यकालीन भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया को शासक वर्ग से प्रोत्साहन मिला। इस काल में शासक वर्ग शहरी था। शासक वर्ग ने नए–नए शहर बसाये तथा यहाँ उद्योग धंधो तथा व्यापार को प्रोत्साहित किया। शहर के दो प्रमुख लक्षण हैः पहला एक सीमित स्थान पर आबादी का उच्च घनत्व ,दूसरा जनसंख्या का गैर कृषि कार्यो में संलग्न होना।

15.2.1 सल्तनत काल में नगरीकरणः

–सल्तनत काल में नगरों की संख्या का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं मिलता है। किन्तु अबुल फजल ने 3200 कस्बों की गिनती की है।सम्भवतः सल्तनत काल में कस्बों की संख्या इतनी ही रही होगी।क्योंकि मुगल शासन की स्थापना कें तुरन्त बाद नगरो की संख्या अधिक नहीं होगी।

केन्द्रीय व्यवस्था के कारण नए शासक वर्ग के हाथ में विशाल आर्थिक संसाधन आ गए, जिससे एक बडी सेना , एक प्रभावशाली अमीर वर्ग और उसका शान–शौकत से रहने का खर्च उठाने की क्षमता हासिल हो गयी इन सबके लिए पक्की इमारतें ,वस्त्र, विलासिता के सामान आदि की माँग वृद्धि हुई। परिणामस्वरुप शिल्पियों एवं कामगारों की संख्या में वृद्धि हुई। अधिकतर निर्माण कार्य कस्बों का महत्व बढ़ गया। और ये नए आर्थिक सामाजिक सम्बंधो के केन्द्र बन गए।

एच0 सी0 वर्मा की परिभाषा के अनुसार शहरीकरण "ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक जनपद का ग्रामीण स्वरुप क्रमश लुप्त हो गया और उसमे बसने वाले अधिकाशं लोग गैर कृषक हो गये और लगभग नियमित रुप से अपने खाने का सामान खरीदने लगे।" उन्होने स्पष्ट किया है, " ऐसी स्थिति में मुद्रा की अर्थव्यस्था का वर्चस्व होना , उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन और उद्योग का विस्तार होना अवश्संभावी था ,जिसके परिणामस्वरुप आमदनी और बाहरी व्यापार होने लगा।"

शहरों की उत्पत्ति और पतन के कारण पूरे विश्व में बहस का विषय रहा है। यूरोप में व्यापार और यूरोप में मध्यकाल में प्रचलित उत्पादन की प्रमुख विधि पर आधारित था।जिससे पूँजीवाद का विकास हुआ और बाद में औद्योगिक क्रान्ति हुई। किन्तु भारत के सम्बंध में शहरीकरण यूरोप से भिन्न रहा है।

सैयद नूरूल हसन ने इस विषय पर सावधान किया है।जिस प्रकार का सामंतवाद यूरोप में था वैसा सामंतवाद भारत में सन् 1200 ई0 के बाद विद्यमान नहीं था। तुर्की राज केंन्द्रीकृत व्यवस्था थी , जिसमे एकीकृत भूराजस्व व्यवस्था थी। जिससे नए प्रकार कें ग्रामीण सम्बंध कायम हुए ,जिनके परिणामस्वरुप नगरो एवं कस्बों का विकास हुआ। इरफान हवीव ने स्पष्ट करते हुए कहा है कि, शहरी विकास मुख्यतः शासक वर्ग द्वारा भूमिकर के रुप मे वसूल किये गये अधिशेष पर आधारित था,जिसको मुख्यतः नगरों में रहने वाले उस वर्ग के सदस्यों उनके आश्रितों और उनके नौकरों मे विभाजित किया जाता था। इस शोषण के परिणाम स्वरुप शहरी केन्द्रों की स्थापना हुई।

सल्तनत काल में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास समान रुप से नही हुआ। 13वी शताब्दी में तुर्की राज अपने स्थायित्व के विषय में आश्वस्त नहीं था। अक्तादारी प्रथा अपने प्रारम्भिक अवस्था में थी । तुर्की शासन से पूर्व के जमींदार बिचौलियो की सत्ता अभी भी कायम थी । 14वी शताब्दी मे परिस्थितियाँ बदली। सल्तनत मजबूत हुई। राजस्व वसूली और सेना को संगीत करने मे सहायता मिली। अलाउद्दीन के राज्य में राजस्व की वसूली और शिल्प उत्पादन में भारी वृद्धि हुई। राजमार्ग सुरक्षित हुई तथा शहरी माँग की आपूर्ति के लिए बाजार कायम हुए।

शिल्प उत्पादन में वृद्धि के कारण श्रेष्ठतर अवसरो की खोज में बडी संख्या में शिल्पकार और व्यापारी आये , जो अपने साथ नई शिल्प और तकनीक लाएं लोगो को बडी संख्या में दास बनाने के कारण आज्ञाकारी और प्रशिक्षित करनें योग्य श्रमिक उपलब्ध हो गए।नए राजस्व प्रशासन द्वारा कृषि अधिशेष पर अधिकार हो गया।जिसका उपयोग शहरी लोग करते थे। इसने नगरीकरण की प्रक्रिया को तीव्र किया।

शहरो को मोटे तौर पर चार वर्गो मे बाँटा जा सकता है।

1. प्रासनिक शहर जैसे दिल्ली,पटना आदि जहाँ मुख्यतः प्रशासनिक कर्मचारी रहते थे।
2. धार्मिक शहर अजमेर ,बनारस ,पाकपाटन आदि जो धार्मिक महत्व के कारण पहले सें बसे थे।
3. शिल्पकार सें संबधिंत नगर जो प्रमुख शिल्पों पर निर्भर थे। जैसे बयाना नील पर निर्भर था ढाका मलमल के कारण प्रंसिद्ध था।
4. बंदरगाहों पर बने शहर ,जो माल के आयात निर्यात के कारण प्रसिद्ध थे। भडौच, मुसलीपत्तनम आदि।

किन्तु यहाँ वर्गीकरण पूर्ण पृथकता को व्यक्त नहीं करता है। कोई भी शहर किसी भी रुप मे अनन्य नहीं था।वस्तुतः शहरो में सभी प्रकार की गतिविधियाँ होती थी। दिल्ली जैसे प्रशासनिक नगर में व्यापारी, सूफी तथा अन्य सन्त आते थे। यहाँ अनेक यह शहर प्रशासन केंन्द्र के साथ–साथ शिल्प उत्पादन का भी बडा केंन्द्र था।

15.2.2 मुगलकाल में नगरीरण :–

मुगलकाल के दौरान शहरीकरण की प्रक्रिया सल्तनत काल के शहरीकरण से मिले है। मुगलकाल के दौरान बहुत से सहवर्ती कारणों से शहरी विस्तार में तीव्रता आई।ग्रामीण समुदाय का शहरी समुदाय में परिवर्तन हुआ। "कारिया"और "कस्बा" से "शहर" को प्रशासनिक ढाँचा के कारण भी शहरीकरण में तीव्रता आई।कृषि के उन्नत तरीको और कृषि उत्पादन के बढने से साम्राजय की राजधानी, प्रदीप–क्षेत्रीय राज धानियों और जिला मुख्यालयों (सरकार) का विकास हुआ।

यह स्वीकार्य तथ्य है, कि मुगल शासन वर्ग की आय का लगभग 40 प्रतिशत शिल्प उत्पादन में लगाया जाता था। नगरों की जनता के जीवन –निर्वाह के लिए भौतिक उपयोग की वस्तुएँ आवश्यक रही

होगी जो गाँव की जनता के लिए थी । "शहरी जनसंख्या" में वे लोग भी शामिल थे जो ग्रामीण माल को शहर के बाजारो में परिवहन करते थे।

शहरों के शिल्प उत्पादन शासन वर्ग, शहरी जनसंख्या और निर्यात की माँग पूरी करते थे। गाँव की आबादी में शहरी शिल्प उत्पादन की कितनी खपत होती थी, इसका आंकलन करना कठिन है। सामान्तयः यह माना जाता है कि गाँव में महीन कपडें,आभूषण तथा अस्त्रो–शस्त्रों की माँग थी। गाँव की मुख्य माँग नमक, हल,कृषि के उपकरण बनाने के लिए लौहे की रही होगी।

मुगल कालीन भारत में शहरो की संख्या ,आकार और उनकी धन संपदा में तेजी से वृद्धि हुई। उनमें से कुछ की आबादी यूरोप और इंग्लैण्ड के समकालीन शहरो से भी अधिक थी । लेकिन उनकी वृद्धि से पारस्परिक गाँवों के जीवन का कोई अहित नही हुआ। कुछ शहर पुनर्जीवत हुए और कुछ नये शहर बने। कुछ अफसरों ने बनवाये और कुछ अभिजात्य वर्ग के लोगों ने। यह सब बादशाह की अनुमति से किया गया।नगरीकरण के लिए बहुत से कारण उत्तरादायी थे प्रशासनिक,सैनिक भौगोलिक, आर्थिक, और धार्मिक/छोटे शहर स्थानीय जरूरतों और व्यापार की पूर्ति करते थे। बड़े शहरों में विविध प्रकार कें निर्माण कार्य होते थे, बाजार थे,ऋण व संचार की सुविधा थी।

मुगल काल में नगरीकरण राजतंत्र, अर्थवयवस्था के व्यापक संदर्भ,राजनैतिक परिवर्तनों, प्रशासनिक संघटन भौतिक सामाजिक पर्यावरण से सम्बंधित है। जिसमे उत्पादन एवं वितरण ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

15.3 मध्यकाल में यातायातः–

मध्यकाल में यातायात के दो प्रमुख माध्यम थे–जल मार्ग एवं थल मार्ग। थल मार्ग से व्यापारी अपना सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए मनुष्यों एवं जानवरों का उपयोग करते थे। बैलगाडीं ऊँट खच्चर, गधों, हाथी ,घोडे, पालकी यातायात के साधन थे। बैलगाड़ी, खच्चर, गधों आदि का प्रयोग माल ढोने के लिए होता था। चार पहिए वाले रथ, इक्के, पालकी, बैलगाड़ी, हाथी, घोड़ों का प्रयोग मनुष्य आवागमन के लिए भी करता था। ऊँटो का प्रयोग सैनिक साजो सामान ढोने के लिए होता था।रेगिस्तान के लिए ऊँट के बिना यातायात सम्भव नही था। व्यापारी लोग गधों पर भी सामान लादकर लाते थे।

पंजाब,सिंध व बंगाल में यातायात के साधन के रुप में यात्री व व्यापारी नौकाओ का प्रयोग करते थे । बंगाल से आगरा तक मार्ग प्रायः नदियो द्वारा ही तय किया जाता था। इब्नबतूता खुसरूआबाद नदी में नौवहन का विशेष वर्णन करता है।

अन्तर्देशीय आवागमन भी जल मार्गे से होता था। निकोलो कोन्टी ने पंद्रहवी शताब्दी में 1000 टन के यात्री जहाजो का उल्लेख किया है। अबुल फजल के अनुसार "मौलिम" जहाज पर एक महत्वपूर्ण नाविक होता था, जो दिशाओ को पहचानने के लिए सितारों की स्थिति पढने में निपुण था।

15.4 सारांशः–

भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया तुर्को के आने से पहले से ही विद्मान थी। यद्यपि मध्यकालीन शासक वर्ग ने , स्वयं शहरी होने के कारण, नगरीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान की। लेकिन उन्होंने नगरीकरण की शुरुआत नहीं थी। नगरीकरण की प्रक्रिया को कृषि के अधिशेष उत्पादन, नए शिल्प के विकास ने प्रोत्साहित किया।

15.5 शब्दावलीः–

अन्तर्देशीय– देश के आंतरिक मार्ग से सम्बंधित

मौलिक– जहाज पर एक महत्वपूर्ण नाविक

बंदरगाह– समुद्र के किनारे जहाजों के ठहरने का स्थान।

सांमतवाद–वह शासन व्यवस्था जिसमें राज्य की भूमि बडे – बडे जमींदारो के अधिकार में रहती थी।

15.6 स्वमूल्यांकनः–

निम्नलिखित कथन पर सही (✓) या गलत (✗) चिन्ह लगाये।

1. अबुल फजल कें अनुसार 3200 कस्बे थे।
2. मुसलीपटतनम् एक बंदरगाह नगर था।
3. बयाना कपड़ा उत्पादन के लिए प्रसिद्ध था।
4. पंद्रहवी शताब्दी मे 1000 टन के यात्री जहाज थे।
5. व्यापारी गधों पर सामान नहीं लादते थे।

उत्तर– (1) (✓), (2) (✓), (3) (✗), (4) (✓), (5) (✗),

5.7 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तकेः–

1. एच0 सी0 वर्मा– मेडिवल रूट्स टू इंडिया

2. ए0 के0 एम0 फारूखी – रोड्स एंड कम्यूनिकेशन्स इन मुगल इंडिया
3. एच0 के0 नकवी– कैपिटल सिटीज ऑफ मुगल एम्पायर

15.8 अभ्यासकार्य प्रश्नः–

1.नगरीकरण क्या है? सल्तनत कालीन नगरीकरण का वर्णन करे।

2.मुगल कालीन नगरीकरण की विषेशताओं का उल्लेख करे।

3.मध्यकाल में यातायात कें विभिन्न साधनों का वर्णन करें।